ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः। दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः। विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥

वर्ष ८३ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६५, श्रीकृष्ण-सं० ५२३४, जनवरी २००९ ई० | संख्या १

पूर्ण संख्या ९८६

दिव्य मणिद्वीपमें देवी भुवनेश्वरीकी उपासना

ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः। मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते॥×××
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमाराङ्गवल्लरी। सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी॥
निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी। कोटिकोटिरवीन्दूनां कान्तिं या बिभ्रती परा॥
नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवाङ्गनादिभिः। सर्वाभिर्देवताभिस्तु समन्तात्परिवेष्टिता॥×××
या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्॥
समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवन्ते जगदीश्वरीम्। सप्तकोटिमहामन्त्रा मूर्तिमन्त उपासते॥
महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्। कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥

ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना गया है, वही मणिद्वीप है; जहाँ भगवती भुवनेश्वरी विराजमान रहती हैं। वे भगवती समस्त शृंगारवेषसे सम्पन्न, लताके समान अत्यन्त कोमल अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणासे ओतप्रोत हैं। वे अपनी वाणीकी मधुरतासे वीणाके स्वरोंको भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती करोड़ों-करोड़ों सूर्यों तथा चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती हैं। वे बहुत-सी सखियों, दासियों, देवांगनाओं तथा समस्त देवताओंसे चारों ओरसे सदा घिरी रहती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रहकर जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। मूर्तिमान् होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्याएँ उन साम्यावस्थावाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हैं। [**श्रीमद्देवीभागवत स्कन्ध १२**]

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८३वें वर्ष—सन् २००९ का यह विशेषाङ्क 'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४८० पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३५	सं० योगवासिष्ठ	१००	६६	सं० भविष्यपुराण	११०
१०	योगाङ्क	१००	३६	सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१३०	६७	शिवोपासनाङ्क	८५
१९	सं० पद्मपुराण	१५०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१३०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान्		७०	धर्मशास्त्राङ्क	९०
२१	सं० ब्रह्मपुराण	८०		श्रीराधाकृष्णकी दिव्य		७१	कूर्मपुराण	८०
२३	उपनिषद्-अङ्क	१२५		लीलाओंका वर्णन]	१००	७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	१५०	४४-४५	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका		७३	वेदकथाङ्क	८०
२५	सं० स्कन्दपुराण	२००		हिन्दी अनुवाद)	१३०	७४	सं० गरुडपुराण	१००
२६	भक्त-चरिताङ्क	१४०	४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	६०	७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१३०
२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	९०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	
२८	सं० नारदपुराण	१२०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	९०		(११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	७५	७९	देवीपुराण [महाभागवत]	
३१	तीर्थाङ्क	१२०	५३	सूर्याङ्क	७०		शक्तिपीठाङ्क	८०
३४	सं० देवीभागवत		५६	वामनपुराण	८५	८१	अवतार-कथाङ्क	९०
	(मोटा टाइप)	१५०	५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१६५	८२	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

॥ श्रीहरिः ॥

'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' [उत्तरार्ध]-की विषय-सूची

मङ्गलाचरण

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- दिव्य मणिद्वीपमें देवी भुवनेश्वरीकी उपासना	९
२- श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य	१७
३- श्रीमद्देवीभागवतसुभाषितसुधा	१८
४- **श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (उत्तरार्ध)— सिंहावलोकन (राधेश्याम खेमका)**	२०

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

सप्तम स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	पितामह ब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको सन्तानोत्पत्तिसे विरत करना और दक्षका उन्हें शाप देना, दक्षकन्याओंसे देवताओं और दानवोंकी उत्पत्ति	४३
२-	सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा	४५
३-	सुकन्याका च्यवनमुनिके साथ विवाह	४८
४-	सुकन्याकी पतिसेवा तथा वनमें अश्विनीकुमारोंसे भेंटका वर्णन	५१
५-	अश्विनीकुमारोंका च्यवनमुनिको नेत्र तथा नवयौवनसे सम्पन्न बनाना	५४
६-	राजा शर्यातिके यज्ञमें च्यवनमुनिका अश्विनीकुमारोंको सोमरस देना	५७
७-	क्रुद्ध इन्द्रका विरोध करना; परंतु च्यवनके प्रभावको देखकर शान्त हो जाना, शर्यातिके बादके सूर्यवंशी राजाओंका विवरण	६०
८-	राजा रेवतकी कथा	६२
९-	सूर्यवंशी राजाओंके वर्णनके क्रममें राजा ककुत्स्थ, युवनाश्व और मान्धाताकी कथा	६५
१०-	सूर्यवंशी राजा अरुणद्वारा राजकुमार सत्यव्रतका त्याग, सत्यव्रतका वनमें भगवती जगदम्बाके मन्त्र-जपमें रत होना	६८
११-	भगवती जगदम्बाकी कृपासे सत्यव्रतका राज्याभिषेक और राजा अरुणद्वारा उन्हें नीतिशास्त्रकी शिक्षा देना	७१
१२-	राजा सत्यव्रतको महर्षि वसिष्ठका शाप तथा युवराज हरिश्चन्द्रका राजा बनना	७३
१३-	राजर्षि विश्वामित्रका अपने आश्रममें आना और सत्यव्रतद्वारा किये गये उपकारको जानना	७६
१४-	विश्वामित्रका सत्यव्रत (त्रिशंकु)-को सशरीर स्वर्ग भेजना, वरुणदेवकी आराधनासे राजा हरिश्चन्द्रको पुत्रकी प्राप्ति	७९
१५-	प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेसे वरुणका क्रुद्ध होना और राजा हरिश्चन्द्रको जलोदरग्रस्त होनेका शाप देना	८२
१६-	राजा हरिश्चन्द्रका शुन:शेपको स्तम्भमें बाँधकर यज्ञ प्रारम्भ करना	८५
१७-	विश्वामित्रका शुन:शेपको वरुणमन्त्र देना और उसके जपसे वरुणका प्रकट होकर उसे बन्धनमुक्त तथा राजाको रोगमुक्त करना, राजा हरिश्चन्द्रकी प्रशंसासे विश्वामित्रका वसिष्ठपर क्रोधित होना	८८
१८-	विश्वामित्रका मायाशूकरके द्वारा हरिश्चन्द्रके उद्यानको नष्ट कराना	९१
१९-	विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर राजा हरिश्चन्द्रका राज्यदान करना	९३
२०-	हरिश्चन्द्रका दक्षिणा देनेहेतु स्वयं, रानी और पुत्रको बेचनेके लिये काशी जाना	९६
२१-	विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा माँगना और रानीका अपनेको विक्रयहेतु प्रस्तुत करना	९९
२२-	राजा हरिश्चन्द्रका रानी और राजकुमारका विक्रय करना और विश्वामित्रको ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देना तथा विश्वामित्रका और अधिक धनके लिये आग्रह करना	१००
२३-	विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेचकर ऋणमुक्त करना	१०३

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२४-	चाण्डालका राजा हरिश्चन्द्रको श्मशानघाटमें नियुक्त करना	१०५
२५-	सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु, रानीका करुण विलाप, पहरेदारोंका रानीको राक्षसी समझकर चाण्डालको सौंपना और चाण्डालका हरिश्चन्द्रको उसके वधकी आज्ञा देना	१०७
२६-	रानीका चाण्डालवेशधारी राजा हरिश्चन्द्रसे अनुमति लेकर पुत्रके शवको लाना और करुण विलाप करना, राजाका पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित होना और विलाप करना	१११
२७-	चिता बनाकर राजाका रोहितको उसपर लिटाना और राजा-रानीका भगवतीका ध्यानकर स्वयं भी पुत्रकी चितामें जल जानेको उद्यत होना, ब्रह्माजीसहित समस्त देवताओंका राजाके पास आना, इन्द्रका अमृत-वर्षा करके रोहितको जीवित करना और राजा-रानीसे स्वर्ग चलनेके लिये आग्रह करना, राजाका सम्पूर्ण अयोध्या-वासियोंके साथ स्वर्ग जानेका निश्चय	११४
२८-	दुर्गम दैत्यकी तपस्या; वर-प्राप्ति तथा अत्याचार, देवताओंका भगवतीकी प्रार्थना करना, भगवतीका शताक्षी और शाकम्भरीरूपमें प्राकट्य, दुर्गमका वध और देवगणोंद्वारा भगवतीकी स्तुति	११६
२९-	व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उनसे उन्हींकी आराधना करनेको कहना, भगवान् शंकर और विष्णुके अभिमानको देखकर गौरी तथा लक्ष्मीका अन्तर्धान होना और शिव तथा विष्णुका शक्तिहीन होना	१२०
३०-	शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा तथा उनके नाम एवं उनका माहात्म्य	१२२
३१-	तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा भगवतीका हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट होनेका आश्वासन देना	१२६
३२-	देवीगीताके प्रसंगमें भगवतीका हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका वर्णन	१३०
३३-	भगवतीका अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए विराट्रूप प्रकट करना, भयभीत देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न भगवतीका पुन: सौम्यरूप धारण करना	१३२
३४-	भगवतीका हिमालय तथा देवताओंसे परमपदकी प्राप्तिका उपाय बताना	१३५
३५-	भगवतीद्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा कुण्डलीजागरणकी विधि बताना	१३७
३६-	भगवतीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्मस्वरूपका वर्णन	१४०
३७-	भगवतीद्वारा अपनी श्रेष्ठ भक्तिका वर्णन	१४२
३८-	भगवतीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों तथा उत्सवोंका वर्णन	१४४
३९-	देवी-पूजनके विविध प्रकारोंका वर्णन	१४६
४०-	देवीकी पूजा-विधि तथा फलश्रुति	१४८

अष्टम स्कन्ध

१-	प्रजाकी सृष्टिके लिये ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मनुका देवीकी आराधना करना तथा देवीका उन्हें वरदान देना	१५०
२-	ब्रह्माजीकी नासिकासे वराहके रूपमें भगवान् श्रीहरिका प्रकट होना और पृथ्वीका उद्धार करना, ब्रह्माजीका उनकी स्तुति करना	१५२
३-	महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन	१५४
४-	महाराज प्रियव्रतका आख्यान तथा समुद्र और द्वीपोंकी उत्पत्तिका प्रसंग	१५५
५-	भूमण्डलपर स्थित विभिन्न द्वीपों और वर्षोंका संक्षिप्त परिचय	१५६
६-	भूमण्डलके विभिन्न पर्वतोंसे निकलनेवाली विभिन्न नदियोंका वर्णन	१५८
७-	सुमेरुपर्वतका वर्णन तथा गंगावतरणका आख्यान	१५९
८-	इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी आराधना तथा भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाद्वारा हयग्रीवरूपकी उपासना	१६०
९-	हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी आराधना, केतुमाल-वर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी तथा रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना	१६२
१०-	हिरण्मयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी आराधना, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीद्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुष-वर्षमें श्रीहनुमान्जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी स्तुति-उपासना	१६५
११-	जम्बूद्वीपस्थित भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायण-रूपकी स्तुति-उपासना तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन	१६७
१२-	प्लक्ष, शाल्मलि और कुशद्वीपका वर्णन	१६९
१३-	क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीपका वर्णन	१७०
१४-	लोकालोकपर्वतका वर्णन	१७२
१५-	सूर्यकी गतिका वर्णन	१७३
१६-	चन्द्रमा तथा ग्रहोंकी गतिका वर्णन	१७५
१७-	शिशुमारचक्र तथा ध्रुवमण्डलका वर्णन	१७७
१८-	राहुमण्डलका वर्णन	१७८
१९-	अतल, वितल तथा सुतललोकका वर्णन	१७९
२०-	तलातल, महातल, रसातल और पाताल तथा भगवान् अनन्तका वर्णन	१८१
२१-	देवर्षि नारदद्वारा भगवान् अनन्तकी महिमाका गान तथा नरकोंकी नामावली	१८२
२२-	विभिन्न नरकोंका वर्णन	१८४
२३-	नरक प्रदान करनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन	१८८
२४-	देवीकी उपासनाके विविध प्रसंगोंका वर्णन	१८९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

नवम स्कन्ध

१- प्रकृतितत्त्वविमर्श; प्रकृतिके अंश, कला एवं कलांशसे उत्पन्न देवियोंका वर्णन १९३
२- परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन १९९
३- परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे प्रकट विराट्रूप बालकका वर्णन २०३
४- सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच २०६
५- याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति २१०
६- लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना २१२
७- भगवान् नारायणका गंगा, लक्ष्मी और सरस्वतीसे उनके शापकी अवधि बताना तथा अपने भक्तोंके महत्त्वका वर्णन करना २१५
८- कलियुगका वर्णन, परब्रह्म परमात्मा एवं शक्तिस्वरूपा मूलप्रकृतिकी कृपासे त्रिदेवों तथा देवियोंके प्रभावका वर्णन और गोलोकमें राधा-कृष्णका दर्शन २१८
९- पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा उनकी स्तुति २२३
१०- पृथ्वीके प्रति शास्त्र-विपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन २२६
११- गंगाकी उत्पत्ति एवं उनका माहात्म्य २२७
१२- गंगाके ध्यान एवं स्तवनका वर्णन, गोलोकमें श्रीराधा-कृष्णके अंशसे गंगाके प्रादुर्भावकी कथा २३२
१३- श्रीराधाजीके रोषसे भयभीत गंगाका श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी शरण लेना, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गंगाका प्रकट होना २३६
१४- गंगाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसंग २४२
१५- तुलसीके कथा-प्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन २४३
१६- वेदवतीकी कथा, इसी प्रसंगमें भगवान् श्रीरामके चरित्रके एक अंशका कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त २४५
१७- भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग २४८
१८- तुलसीको स्वप्नमें शंखचूड़का दर्शन, ब्रह्माजीका शंखचूड़ तथा तुलसीको विवाहके लिये आदेश देना २५१
१९- तुलसीके साथ शंखचूड़का गान्धर्वविवाह, शंखचूड़से पराजित और निर्वासित देवताओंका ब्रह्मा तथा शंकरजीके साथ वैकुण्ठधाम जाना, श्रीहरिका शंखचूड़के पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना २५५
२०- पुष्पदन्तका शंखचूड़के पास जाकर भगवान् शंकरका सन्देश सुनाना, युद्धकी बात सुनकर तुलसीका सन्तप्त होना और शंखचूड़का उसे ज्ञानोपदेश देना २५९
२१- शंखचूड़ और भगवान् शंकरका विशद वार्तालाप २६३

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

२२- कुमार कार्तिकेय और भगवती भद्रकालीसे शंखचूड़का भयंकर युद्ध और आकाशवाणीका पाशुपतास्त्रसे शंखचूड़की अवध्यताका कारण बताना २६६
२३- भगवान् शंकर और शंखचूड़का युद्ध, भगवान् श्रीहरिका वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें शंखचूड़से कवच माँग लेना तथा शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे हास-विलास करना, शंखचूड़का भस्म होना और सुदामागोपके रूपमें गोलोक पहुँचना २६९
२४- शंखचूड़रूपधारी श्रीहरिका तुलसीके भवनमें जाना, तुलसीका श्रीहरिको पाषाण होनेका शाप देना, तुलसी-महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण एवं माहात्म्यका वर्णन २७१
२५- तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवनका वर्णन २७६
२६- सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान २७८
२७- भगवती सावित्रीकी उपासनासे राजा अश्वपतिको सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति, सत्यवान्के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद २८२
२८- सावित्री-यमराज-संवाद २८३
२९- सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर और धर्मराजद्वारा सावित्रीको वरदान २८४
३०- दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंका वर्णन २८७
३१- सावित्रीका यमाष्टकद्वारा धर्मराजका स्तवन २९३
३२- धर्मराजका सावित्रीको अशुभ कर्मोंके फल बताना ... २९४
३३- विभिन्न नरककुण्डोंमें जानेवाले पापियों तथा उनके पापोंका वर्णन २९५
३४- विभिन्न पापकर्म तथा उनके कारण प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन ३०१
३५- विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाली विभिन्न योनियोंका वर्णन ३०५
३६- धर्मराजद्वारा सावित्रीसे देवोपासनासे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलोंको कहना ३०८
३७- विभिन्न नरककुण्ड तथा वहाँ दी जानेवाली यातनाका वर्णन ३०९
३८- धर्मराजका सावित्रीसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उसके पतिको जीवनदान देना ३१५
३९- भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य, समस्त देवताओंद्वारा उनका पूजन ३१९
४०- दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना ३२१
४१- ब्रह्माजीका इन्द्र तथा देवताओंको साथ लेकर श्रीहरिके पास जाना, श्रीहरिका उनसे लक्ष्मीके रुष्ट होनेके कारणोंको बताना, समुद्रमन्थन तथा उससे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव ३२५
४२- इन्द्रद्वारा भगवती लक्ष्मीका षोडशोपचार पूजन एवं स्तवन ३२८

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
४३-	भगवती स्वाहाका उपाख्यान	३३१
४४-	भगवती स्वधाका उपाख्यान	३३४
४५-	भगवती दक्षिणाका उपाख्यान	३३६
४६-	भगवती षष्ठीकी महिमाके प्रसंगमें राजा प्रियव्रतकी कथा	३४०
४७-	भगवती मंगलचण्डी तथा भगवती मनसाका आख्यान	३४३
४८-	भगवती मनसाका पूजन-विधान, मनसा-पुत्र आस्तीकका जनमेजयके सर्पसत्रमें नागोंकी रक्षा करना, इन्द्रद्वारा मनसादेवीका स्तवन करना	३४६
४९-	आदि गौ सुरभिदेवीका आख्यान	३५२
५०-	भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन	३५४

दशम स्कन्ध

१-	स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना	३५९
२-	देवीद्वारा मनुको वरदान, नारदजीका विन्ध्यपर्वतसे सुमेरुपर्वतकी श्रेष्ठता कहना	३६०
३-	विन्ध्यपर्वतका आकाशतक बढ़कर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध कर लेना	३६२
४-	देवताओंका भगवान् शंकरसे विन्ध्यपर्वतकी वृद्धि रोकनेकी प्रार्थना करना और शिवजीका उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेजना	३६३
५-	देवताओंका वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करना	३६४
६-	भगवान् विष्णुका देवताओंको काशीमें अगस्त्यजीके पास भेजना, देवताओंकी अगस्त्यजीसे प्रार्थना	३६६
७-	अगस्त्यजीकी कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना	३६७
८-	स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नामक मनुओंका वर्णन	३६९
९-	चाक्षुष मनुकी कथा, उनके द्वारा देवीकी आराधनाका वर्णन	३७०
१०-	वैवस्वत मनुका भगवतीकी कृपासे मन्वन्तराधिप होना, सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथा	३७१
११-	सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथाके प्रसंगमें मधु-कैटभकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुद्वारा उनके वधका वर्णन	३७३
१२-	समस्त देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनीका प्राकट्य और उनके द्वारा महिषासुरका वध, शुम्भ-निशुम्भका अत्याचार और देवीद्वारा चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध	३७५
१३-	मनुपुत्रोंकी तपस्या, भगवतीका उन्हें मन्वन्तराधिपति होनेका वरदान देना, दैत्यराज अरुणकी तपस्या और ब्रह्माजीका वरदान, देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और भगवतीका भ्रामरीके रूपमें अवतार लेकर अरुणका वध करना	३८०

एकादश स्कन्ध

१-	भगवान् नारायणका नारदजीसे देवीको प्रसन्न करनेवाले सदाचारका वर्णन	३८६
२-	शौचाचारका वर्णन	३८९
३-	सदाचार-वर्णन और रुद्राक्ष-धारणका माहात्म्य	३९१
४-	रुद्राक्षकी उत्पत्ति तथा उसके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन	३९३
५-	जपमालाका स्वरूप तथा रुद्राक्ष-धारणका विधान	३९५
६-	रुद्राक्षधारणकी महिमाके सन्दर्भमें गुणनिधिका उपाख्यान	३९६
७-	विभिन्न प्रकारके रुद्राक्ष और उनके अधिदेवता	३९९
८-	भूतशुद्धि	४०१
९-	भस्म-धारण (शिरोव्रत)	४०२
१०-	भस्म-धारणकी विधि	४०४
११-	भस्मके प्रकार	४०६
१२-	भस्म न धारण करनेपर दोष	४०७
१३-	भस्म तथा त्रिपुण्ड्र-धारणका माहात्म्य	४१०
१४-	भस्मस्नानका महत्त्व	४१२
१५-	भस्म-माहात्म्यके सम्बन्धमें दुर्वासामुनि और कुम्भीपाकस्थ जीवोंका आख्यान, ऊर्ध्वपुण्ड्रका माहात्म्य	४१५
१६-	सन्ध्योपासना तथा उसका माहात्म्य	४२०
१७-	गायत्री-महिमा	४२६
१८-	भगवतीकी पूजा-विधिका वर्णन, अन्नपूर्णादेवीके माहात्म्यमें राजा बृहद्रथका आख्यान	४२८
१९-	मध्याह्नसन्ध्या तथा गायत्रीजपका फल	४३१
२०-	तर्पण तथा सायंसन्ध्याका वर्णन	४३२
२१-	गायत्रीपुरश्चरण और उसका फल	४३४
२२-	बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रकी विधि	४३७
२३-	कृच्छ्रचान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन	४३९
२४-	कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग	४४२

द्वादश स्कन्ध

१-	गायत्रीजपका माहात्म्य तथा गायत्रीके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द आदिका वर्णन	४४७
२-	गायत्रीके चौबीस वर्णोंकी शक्तियों, रंगों एवं मुद्राओंका वर्णन	४४८
३-	श्रीगायत्रीका ध्यान और गायत्रीकवचका वर्णन	४४९
४-	गायत्रीहृदय तथा उसका अंगन्यास	४५०
५-	गायत्रीस्तोत्र तथा उसके पाठका फल	४५१
६-	गायत्रीसहस्रनामस्तोत्र तथा उसके पाठका फल	४५२
७-	दीक्षाविधि	४६५
८-	देवताओंका विजयगर्व तथा भगवती उमाद्वारा उसका भंजन भगवती उमाका इन्द्रको दर्शन देकर ज्ञानोपदेश देना	४७२
९-	भगवती गायत्रीकी कृपासे गौतमके द्वारा अनेक ब्राह्मण-परिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान	४७६
१०-	मणिद्वीपका वर्णन	४८०
११-	मणिद्वीपके रत्नमय नौ प्राकारोंका वर्णन	४८४
१२-	भगवती जगदम्बाके मण्डपका वर्णन तथा मणिद्वीपकी महिमा	४८८
१३-	राजा जनमेजयद्वारा अम्बायज्ञ और श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणका माहात्म्य	४९२
१४-	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणकी महिमा	४९३
१५-	नम्रनिवेदन और क्षमा-प्रार्थना	४९५

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- सच्चिदानन्दमयी देवी	आवरण-पृष्ठ
२- मूलप्रकृतिके दक्षिण अंगसे राधाका और वाम अंगसे लक्ष्मीका प्राकट्य	१
३- मकरवाहिनी भगवती श्रीगंगा	२
४- इन्द्र आदि देवताओं तथा महर्षि विश्वामित्रद्वारा हरिश्चन्द्रको आशीर्वाद	३
५- भगवती शाकम्भरीदेवीद्वारा शाककी वर्षा	४
६- भगवती गायत्रीके प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—तीनों सन्ध्या-कालोंका ध्यान-स्वरूप	५
७- श्रीकृष्णसे पंचमुख महादेवका प्राकट्य	६
८- भगवती भ्रामरीदेवी	७
९- मणिद्वीपाधिष्ठात्री भगवती श्रीभुवनेश्वरी	८

(रेखा-चित्र)

१- दक्षद्वारा नारदजीको शाप देना	४४
२- सुकन्याद्वारा महर्षि च्यवनके नेत्रोंका भेदा जाना	४७
३- सुकन्याद्वारा महर्षि च्यवनकी शुश्रूषा	५१
४- अश्विनीकुमारों तथा महर्षि च्यवनका एक-जैसा रूप देखकर सुकन्याका भगवतीसे प्रार्थना करना	५५
५- राजा शर्याति एवं महर्षि च्यवनका संवाद	५९
६- महर्षि च्यवनके आह्वानपर यज्ञाग्निसे कृत्याका उत्पन्न होना	६०
७- महर्षि च्यवनद्वारा देवराज इन्द्र एवं अश्विनीकुमारोंको सोमरसका पान कराना	६२
८- राजा यौवनाश्वद्वारा अभिमन्त्रित जलका पान करना	६७
९- यौवनाश्वकी दायीं कुक्षिसे मान्धाताका उत्पन्न होना	६७
१०- देवराज इन्द्रका मान्धाताको अपनी तर्जनीद्वारा दुग्धपान कराना	६८
११- अग्निप्रवेशके लिये उद्यत सत्यव्रतको जगदम्बाका दर्शन	७१
१२- देवराजद्वारा त्रिशंकुको विमानपर बैठाना	८०
१३- मन्त्रीका शुनःशेपको राजा हरिश्चन्द्रके पास ले जाना	८६
१४- राजा हरिश्चन्द्रके सन्ध्या-वन्दनके समय मुनि विश्वामित्रका आना	९५
१५- राजा और रानीकी मूर्च्छा	९८
१६- शैव्याद्वारा हरिश्चन्द्रसे अपनेको बेचकर दक्षिणा चुकाने-हेतु कहना	१००
१७- ब्राह्मणका बाल पकड़कर शैव्याको खींचना	१०१
१८- ब्राह्मणका शैव्या एवं रोहितको खरीदकर अपने घरको प्रस्थान	१०१
१९- हरिश्चन्द्रद्वारा स्वयंको चाण्डालके हाथ बेचकर मुनि विश्वामित्रको दक्षिणा देना	१०५
२०- श्मशानमें राजा हरिश्चन्द्र	१०६
२१- रानी शैव्याको मारनेहेतु चाण्डालको सौंपा जाना	१०९
२२- राजा हरिश्चन्द्रका पुत्रको मृत देखकर मूर्च्छित होना	११२
२३- हरिश्चन्द्रसहित शैव्याको देवताओंका दर्शन	११४
२४- देवताओंद्वारा अमृतमयी वृष्टि तथा रोहितका जीवित होना	११५
२५- भगवतीका देवताओंको फल-मूल प्रदान करना	११८
२६- देवीद्वारा दुर्गमका वध	११९
२७- भगवान् विष्णुद्वारा देवताओंको प्रबोधन	१२७
२८- देवताओंको भगवतीका दर्शन	१२८
२९- हिमालय और देवताओंको देवीका दर्शन	१२९
३०- मनुसहित ब्रह्माजीद्वारा भगवान् वराहकी स्तुति	१५३
३१- भगवान् शिवद्वारा भगवान् संकर्षणका आराधन	१६१
३२- भद्रश्रवाद्वारा हयमूर्ति भगवान् वासुदेवकी स्तुति	१६२
३३- भक्तराज प्रह्लादद्वारा भगवान् नृसिंहकी स्तुति	१६३
३४- लक्ष्मीजीद्वारा कामदेवरूपधारी भगवान् विष्णुका स्तवन	१६३
३५- मनुद्वारा मत्स्यरूपधारी भगवान्‌की स्तुति	१६४
३६- अर्यमाद्वारा कच्छपरूपधारी भगवान्‌की स्तुति	१६५
३७- पृथ्वीदेवीद्वारा आदिवराहरूप भगवान्‌की उपासना	१६५
३८- हनुमान्‌जीद्वारा भगवान् श्रीरामकी स्तुति	१६६
३९- नारदजीद्वारा भगवान् आदिपुरुषका स्तवन	१६७
४०- नारकीय यातना	१८५
४१- नारकीय यातना	१८७
४२- देवीके जिह्वाग्रसे गौरवर्णा कन्याका प्रकट होना	२०१
४३- भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोपोंका प्रकट होना	२०१
४४- राधाजीके रोमकूपोंसे अनेक गोपकन्याओंका प्रकट होना	२०२
४५- श्रीकृष्णके शरीरसे आविर्भूत देवी दुर्गाका उनकी स्तुति करना तथा श्रीकृष्णका उन्हें रत्नमय सिंहासन प्रदान करना	२०२
४६- विराट्‌रूप बालकका भगवान् श्रीकृष्णसे उनके चरण-कमलोंमें अविचल भक्तिका वर माँगना	२०४

विषय	पृष्ठ-संख्या
४७- भगवती सरस्वती	२०८
४८- ब्रह्माजीद्वारा भृगुको विश्वजय नामक सरस्वती-कवच बतलाना	२०८
४९- याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीको प्रणाम करना	२१०
५०- लक्ष्मी, सरस्वती और गंगाके परस्पर शापका कारण सुनकर भगवान् श्रीहरिका उनसे समयानुकूल बातें कहना	२१४
५१- राधाका श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तप करना और श्रीकृष्णका प्रकट होना	२२२
५२- पृथ्वीदेवी	२२५
५३- ब्रह्मा, शिव एवं मुनियोंद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन	२२८
५४- गंगा-भगीरथके सामने गोपवेषधारी श्रीकृष्णका प्राकट्य	२२९
५५- श्रीकृष्णजीका गंगाजीको पतिरूपमें प्राप्त होनेका आश्वासन देना	२३०
५६- माँ गंगा	२३२
५७- गोलोकमें भगवान् शंकरका श्रीकृष्ण और राधाको संगीत सुनाना	२३४
५८- गोपोंद्वारा भगवती राधिकाको प्रणाम करना	२३७
५९- ब्रह्मा, शिव एवं श्रीकृष्णद्वारा भगवती श्रीराधिकाकी स्तुति	२४०
६०- शिव तथा अन्य देवताओंका भगवान् विष्णुको प्रणाम करना	२४४
६१- तुलसीका भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करने-हेतु तप करना	२४९
६२- ब्रह्माजीद्वारा शंखचूड़ एवं तुलसीको विवाहके लिये प्रेरित करना	२५४
६३- शंखचूड़के वधके लिये भगवान् विष्णुद्वारा शिवको त्रिशूल प्रदान करना	२५९
६४- भगवान् शंकर, कार्तिकेय तथा भद्रकालीद्वारा शंखचूड़को आशीर्वाद देना	२६४
६५- तुलसीको भगवान् नारायणका दर्शन	२७२
६६- सावित्रीद्वारा यमराजका अनुगमन	२८२
६७- यमराजद्वारा सावित्रीको उपदेश	२८७
६८- गोपियाँ एवं भगवान् श्रीकृष्ण	३१६
६९- यमराजद्वारा सावित्रीको वरप्रदान	३१८
७०- देवराज इन्द्रका गुरु बृहस्पतिसे दुर्वासाद्वारा प्राप्त शापका वर्णन	३२३
७१- भगवान् विष्णुद्वारा लक्ष्मीजीसे क्षीरसागरके यहाँ जन्म लेनेहेतु कहना	३२७
७२-तपस्यारत स्वाहादेवीको भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन	३३२
७३-ब्रह्माजीद्वारा स्वाहादेवीको पितरोंके लिये प्रदान करना	३३५

विषय	पृष्ठ-संख्या
७४-यज्ञपुरुषद्वारा भगवती दक्षिणाकी स्तुति	३३९
७५-भगवती षष्ठीद्वारा बालकको जीवितकर प्रियव्रतको प्रदान करना	३४१
७६-भगवान् श्रीकृष्ण, ब्रह्माजी, शिवजी एवं कश्यपऋषिका ऋषि जरत्कारुके आश्रममें आना	३४८
७७-श्रीकृष्णद्वारा अपने वामभागसे लीलापूर्वक बछड़ेसहित दुग्धवती सुरभि गौको प्रकट करना	३५२
७८-दुर्गायन्त्र	३५७
७९-मनुद्वारा देवीसे वरयाचना	३६०
८०-विन्ध्याचल तथा देवर्षि नारदका वार्तालाप	३६१
८१-विन्ध्यद्वारा भगवान् सूर्यका मार्ग अवरुद्ध करना	३६२
८२-देवताओंद्वारा महादेवजीका स्तवन	३६३
८३-भगवान् विष्णुका देवताओंको आश्वासन देना	३६५
८४-विन्ध्यद्वारा महर्षि अगस्त्यको साष्टांग प्रणाम करना	३६८
८५-चाक्षुष मनुको भगवतीका दर्शन	३७१
८६-राजा सुरथका सुमेधामुनिके आश्रमपर पहुँचना	३७२
८७-सुरथद्वारा महर्षि सुमेधासे प्रश्न	३७२
८८-मधु-कैटभका ब्रह्माजीके वधको उद्यत होना	३७३
८९-भगवान् विष्णुद्वारा मधु-कैटभका वध	३७४
९०-देवताओंद्वारा भगवान् विष्णु एवं शिवजीको महिषासुरके अत्याचार बताना	३७५
९१-भगवतीद्वारा महिषासुरका वध	३७६
९२-देवताओंद्वारा भगवतीका स्तवन	३७७
९३-शुम्भासुरके दूत सुग्रीव एवं देवीका संवाद	३७८
९४- शुम्भका धूम्राक्षको देवीको पकड़कर लानेका आदेश देना	३७८
९५-भगवतीद्वारा हुंकारमात्रसे धूम्राक्षको भस्म करना	३७९
९६-सुरथद्वारा देवीकी पार्थिव मूर्तिका पूजन	३७९
९७-मनुपुत्रोंद्वारा देवीकी स्तुति	३८०
९८- अरुण नामक दैत्यको ब्रह्माजी एवं गायत्रीका दर्शन	३८२
९९-देवीद्वारा अपने हाथसे भ्रमरोंको उत्पन्न करना	३८५
१००-देवर्षिद्वारा भगवान् नारायणसे प्रश्न	३८६
१०१-षट्चक्रमूर्ति	३८८
१०२-पूरक आदि प्राणायाम	४२२
१०३-भगवती जगदम्बाका देवताओंके समक्ष यक्षरूपमें प्रकट होना	४७२
१०४-अग्निद्वारा तृणको जलानेका प्रयास करना	४७३
१०५-वायुदेवद्वारा तृणको उड़ानेका प्रयास करना	४७३
१०६-देवराज इन्द्रको भगवती हैमवती शिवाका दर्शन	४७४
१०७-जगज्जननी भगवतीद्वारा ऋषि गौतमको पूर्णपात्र प्रदान करना	४७७
१०८-ऋषि गौतमद्वारा कृतघ्न ब्राह्मणोंको शाप	४७८

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम्। कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः॥
मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते। समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम॥
पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय। पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः॥
नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम्। न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि॥
अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात्। विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः॥
वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवन्ध्या च याङ्गना। श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः॥
यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति। तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती॥
नेक्षन्ते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः। ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः॥
मण्डलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः। शतावृत्त्यास्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति॥
प्रतिसन्ध्यं पठेद्यस्तु सन्ध्यां कृत्वा समाहितः। एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत्॥
नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः। तस्याम्बिका तु सन्तुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम्॥
वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा। सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥
पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये। वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने॥
वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः। वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि॥

[महर्षि व्यासने राजा जनमेजयसे कहा—] महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है। हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूलप्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है? हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। **[श्रीसूतजी मुनियोंसे बोले—]** जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है। जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो; वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है। यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्याविधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है। शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं। वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। **[श्रीमद्देवीभागवत]**

श्रीमद्देवीभागवतसुभाषितसुधा

नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित्॥

असत्य कभी नहीं बोलना चाहिये और न कभी असत्-मार्गपर ही जाना चाहिये। (७।११।३४)

धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः॥
शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसङ्गं च वर्जयेत्।
यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः॥

धर्ममें सदा बुद्धि लगाये रखनी चाहिये और प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये। नीरस सम्भाषण नहीं करना चाहिये, दुष्टोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये, विविध यज्ञानुष्ठान करते रहना चाहिये और महर्षियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। (७।११।३८-३९)

दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः।
उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः सञ्जायते कथम्॥

मनुष्योंको भाग्य तथा पुरुषार्थ—इन दोनोंका आदर करना चाहिये; क्योंकि बिना उद्योग किये कार्यसिद्धि कैसे हो सकती है? (७।१४।३६)

दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि॥

दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। (७।१६।३९)

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केन च॥
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः।

जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय; उसीसे सन्तोष करता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। (७।१६।४१-४२)

अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः।
तथा वित्तप्रदश्चैव पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

अन्न प्रदान करनेवाला, भयसे बचानेवाला, विद्याका दान करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और जन्म देनेवाला—ये पाँच पिता कहे गये हैं। (७।१७।२७)

प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति।
स भवेदात्महा भूय इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥

जो परम पवित्र तीर्थमें पहुँचकर बिना स्नान किये ही लौट जाता है, वह आत्मघाती होता है—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है। (७।१९।४)

व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै॥
नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम्।

वैभव प्राप्त करके भी जिसने परलोकमें सुख देनेवाले पवित्र यशका उपार्जन नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है। (७।१९।२४-२५)

चिन्तया क्षीयते देहो नास्ति चिन्तासमा मृतिः।

चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है, चिन्ताके समान तो मृत्यु भी नहीं है। (७।१९।४२)

विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः।

जो मनुष्य सम्यक् सोच-समझकर बोलता है, वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है। (७।२३।१२)

असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः॥

असत्य भाषण करनेके कारण अधम मनुष्य शीघ्र ही भयानक नरकमें जाता है। (७।२३।१३)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

उस कार्य-कारणरूप परमात्माको देख लेनेपर इस जीवके हृदयकी ग्रन्थिका भेदन हो जाता है अर्थात् अनात्मपदार्थोंमें स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है, सभी सन्देह दूर हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं। (७।३६।११)

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥

जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता प्रवाहित नहीं होती, जहाँ उसके उद्गमस्थानस्वरूप भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ समारोहपूर्वक भगवान् यज्ञेश्वरकी पूजा-अर्चा नहीं होती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये। (८।११।२५)

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

जो मनुष्य सौ योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा'—इस

प्रकार उच्चारण करता है, वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (९।११।५०)

किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः।
किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥

जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो; उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन! (९।१८।८०)

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग किये कर्मका क्षय नहीं होता। अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल मनुष्यको भोगना ही पड़ता है। (९।२९।६९-७०)

पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम्।
मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो॥

पिताकी अपेक्षा माता सौ गुनी श्रेष्ठ है, यह निश्चित है; किंतु ज्ञान प्रदान करनेवाला गुरु मातासे भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है। (९।३८।६)

ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम्।
मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम्॥

[लौकिक] ऐश्वर्य समस्त विपत्तियोंका बीजस्वरूप है, ज्ञानका आच्छादन कर देनेवाला है, मुक्तिमार्गका कुठार है तथा भक्तिमें व्यवधान उत्पन्न करनेवाला है। (९।४०।४६)

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्।
विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥

जो मनुष्य इस संसारमें घोर विपत्तिके समयमें भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्तिमें भी सम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है—ऐसा भगवान् शंकरने कहा है। (९।४०।९१)

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः।
यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत्॥

सभीकी अन्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। वे भगवान् जिसके शरीरसे निकल जाते हैं, वह प्राणी उसी क्षण शव हो जाता है। (९।४१।८)

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम्।
न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति॥

जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहतीं, शिवकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं। (९।४१।३०)

यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद्भुवि॥

जो मनुष्य सुरभि (गौ)-की पूजा करता है, वह पृथ्वीलोकमें पूज्य हो जाता है। (९।४९।२१)

प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः॥

कुमार्गपर चलनेवाला शक्तिशाली व्यक्ति क्या नहीं कर लेता है? (१०।३।१८)

नष्टे स्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत्।

लोकमें स्वाहा (यज्ञ, पूजा आदि) तथा स्वधाकार (श्राद्धादि)-के विलुप्त हो जानेपर कौन शरण देनेवाला होता है? (१०।४।१५)

अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः।

मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणियोंको अविमुक्त काशीक्षेत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। (१०।७।६)

विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा॥

विप्र वृक्ष है, सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ें हैं, वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उस वृक्षके पत्ते हैं। अतएव प्रयत्नके साथ मूल अर्थात् सन्ध्याकी ही रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट जानेपर न तो वृक्ष रहता और न तो शाखा। (११।१६।६)

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते॥
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।

जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अतिथि उसे अपना पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है। (११।२२।१९-२०)

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥

द्विज कोई दूसरा अनुष्ठान आदि कर्म करे अथवा न करे, किंतु एकनिष्ठ होकर केवल गायत्रीका अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है। (१२।१।८)

देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम्।
माने नष्टे जीवितं तु मृतितुल्यं न संशयः॥

[मानके लिये] शरीरका त्याग कर देना भी श्रेष्ठ है; क्योंकि मान ही महापुरुषोंका धन है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यका जीवित रहना मृत्युके समान है, इसमें कोई संशय नहीं है। (१२।८।४७)

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (उत्तरार्ध)—सिंहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर, नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

श्रीमद्देवीभागवतमें वेदोंने भगवती देवीकी स्तुति करते हुए कहा है—

नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे।
निर्गुणे सर्वभूतेशि मातः शङ्करकामदे॥
त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणः प्राणवतां तथा।
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः॥
त्वमुद्गीथेऽर्धमात्रासि गायत्रीव्याहृतिस्तथा।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया॥

(श्रीमद्देवीभा० १।५।५३-५५)

'देवी! आप महामाया हैं, जगत्की सृष्टि करना आपका स्वभाव है, आप कल्याणमय विग्रह धारण करनेवाली एवं निर्गुणा हैं, अखिल जगत् आपका शासन मानता है तथा भगवान् शंकरके आप मनोरथ पूर्ण किया करती हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये आप पृथ्वीस्वरूपा हैं, प्राणधारियोंके प्राण भी आप ही हैं। धी, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति, श्रद्धा, मेधा, धृति और स्मृति—ये सभी आपके नाम हैं। ॐकारमें जो अर्धमात्रा है, वह आपका ही निर्विशेष रूप है। गायत्रीमें आप प्रणव हैं। भूः, भुवः आदि व्याहृतियाँ भी आप ही हैं। जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा और दया—इन नामोंसे आप प्रसिद्ध हैं। माता! हम आपको नमस्कार करते हैं।'

सभी देवी-देवता और दानवोंके लिये ये चिन्मयी पराशक्ति ही आराधना करनेयोग्य हैं। त्रिलोकीमें इन भगवतीसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है—यह बात सत्य है, सत्य है। वेद और शास्त्रोंका भी यही सच्चा तात्पर्य—निर्णय है कि निर्गुण तथा सगुणरूपा चिन्मयी पराशक्ति ही पूजनीय हैं।

पिछले वर्ष कल्याणके विशेषांकके रूपमें श्रीमद्देवीभागवत (पूर्वार्ध)-में छः स्कन्धतककी कथा प्रकाशित की जा चुकी है। इस वर्ष श्रीमद्देवीभागवत (उत्तरार्ध) प्रकाशित हो रहा है, जिसमें सप्तम स्कन्धसे कथा प्रारम्भ हो रही है—

सप्तम स्कन्ध

व्यासजी राजा जनमेजयको कथा सुना रहे हैं। सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विस्तृत वर्णन सुननेकी इच्छा व्यक्त करनेपर राजा जनमेजयको व्यासजी सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित कथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

सर्वप्रथम भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए; ब्रह्माजीने मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य—इन सात मानस पुत्रोंका सृजन किया। ब्रह्माजीकी गोदसे नारदजीका प्राकट्य हुआ, अँगूठेसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए; इसी प्रकार सनक आदि अन्य मानसपुत्रोंकी भी उत्पत्ति हुई। बायें हाथके अँगूठेसे वीरिणी नामकी एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई, जो दक्षप्रजापतिकी पत्नी बनी।

दक्षप्रजापतिके द्वारा वीरिणीके गर्भसे पाँच हजार पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्हें ब्रह्माजीसे प्रजाकी वृद्धि करनेकी प्रेरणा मिली, परंतु देवर्षि नारदने यह कहकर 'पृथ्वीकी वास्तविक परिमितिका बिना ज्ञान किये प्रजाकी सृष्टिकार्यमें तुमलोग कैसे तत्पर हो गये' उन्हें इस कार्यसे विरत कर दिया। दृढ़निश्चयी दक्षप्रजापतिने प्रजाओंकी सृष्टिके लिये पुनः अन्य पुत्र उत्पन्न किये, परंतु उन्हें भी नारदजीने यही कहकर इस कार्यसे विरत कर दिया। यह सब देखकर दक्षने पुत्रशोकसे अत्यन्त कुपित होकर नारदजीको शाप दिया कि तुमने मेरे पुत्रोंको भ्रष्ट किया है, अतएव इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें भी गर्भमें वास करना होगा और मेरा पुत्र बनना पड़ेगा। इस प्रकार शापके प्रभावसे मुनि नारद भी वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए, तदनन्तर दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया। उनमेंसे

तेरह कन्याएँ मरीचिपुत्र महात्मा कश्यपको अर्पित कर दीं तथा अन्य कन्याएँ धर्म, चन्द्रमा, भृगुमुनि, अरिष्टनेमि तथा अंगिराऋषिको प्रदान कीं। उन्हीं कन्याओंके पुत्र तथा पौत्र देवता एवं दानवके रूपमें उत्पन्न हुए, जो परस्पर विरोधका भाव रखते थे। देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, पशु और पक्षी—सब-के-सब कश्यपजीसे उत्पन्न हुए, अतः यह सृष्टि काश्यपी-सृष्टि कहलाती है।

सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा— राजा जनमेजय के पूछनेपर व्यासजी कहते हैं—देवताओंमें सूर्य सबसे श्रेष्ठ हैं, उनका नाम विवस्वान् भी है। उनके पुत्र वैवस्वत मनु थे। वैवस्वत मनुसे इक्ष्वाकु तथा शर्याति आदि नौ पुत्र उत्पन्न हुए। शर्याति एक ऐश्वर्यशाली राजा थे, जिनकी चार हजार पत्नियाँ थीं, उन सबके बीचमें सुकन्या नामकी एक सुन्दर पुत्री थी। उनके नगरसे थोड़ी दूरपर एक सुन्दर सरोवर था; जहाँ महातपस्वी, भृगुवंशी च्यवनमुनि तपस्यामें निमग्न थे। वे जल ग्रहण किये बिना बहुत समयसे जगदम्बाका ध्यान करते थे। उनके शरीरको दीमकोंने पूरी तरहसे ढक लिया था। दीमकोंके कारण वे मिट्टीके ढेरसदृश हो गये थे।

किसी समय वे राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करते हुए उस उत्तम सरोवरपर आये। चंचल स्वभाववाली उनकी पुत्री सुकन्या खेलती हुई वल्मीक बने हुए च्यवनमुनिके निकट पहुँच गयी। उस वल्मीकके भीतर च्यवनऋषिकी दोनों आँखें जुगुनूकी तरह चमक रही थीं। सुकन्याने कौतूहलवश काँटेसे दोनों आँखोंको खोद दिया, जिससे रक्तप्रवाह होने लगा और च्यवनमुनि अन्धे हो गये। सुकन्याके इस कृत्यसे राजाके साथ आनेवाले सभी सैनिक और मन्त्री कष्टमें पड़ गये, राजाको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने च्यवनऋषिसे क्षमा-प्रार्थना की। च्यवनऋषिने यह इच्छा व्यक्त की कि आप सुकन्यासे मेरा विवाह कर दें, इससे राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये, परंतु सुकन्याके द्वारा स्वीकृतिपूर्वक आग्रह करनेपर राजाने च्यवनऋषिसे सुकन्याका विवाह कर दिया। सुकन्या वल्कल आदि धारणकर च्यवनमुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी।

सुकन्या पातिव्रत्यधर्मका पूर्ण पालन करती हुई वृद्ध एवं अन्धे पति च्यवनऋषिकी सेवामें पूर्ण तत्पर थी। उन्हीं दिनों किसी समय सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते हुए च्यवनमुनिके आश्रमके पास आ पहुँचे। वे सर्वांगसुन्दरी सुकन्याको देखकर उसकी ओर कामासक्त हो गये। सुकन्यासे पूरी बात जानकर उन्होंने उसे च्यवनमुनिकी सेवासे विरत करनेका प्रयास किया, परंतु सुकन्याने पतिपरायणा होनेके कारण दृढ़तासे उनकी बातोंका विरोध किया। सुकन्याकी दृढ़ता देखकर अश्विनीकुमारोंने भयभीत होते हुए च्यवनऋषिको युवावस्था तथा सुन्दरता प्रदान करनेका प्रस्ताव रखा। साथ ही एक शर्त रखी—'एक सरोवरमें च्यवनमुनि तथा हमदोनों एक साथ स्नान करेंगे और तीनों एकरूप हो जायँगे, उनमेंसे तुम किसी एकको पतिरूपमें चुन लेना।' यह सुनकर सुकन्या असमंजसमें पड़ गयी। उसने सब बातें अपने पति च्यवनमुनिको बतायीं। अन्तमें च्यवनमुनिकी आज्ञासे सुकन्याने इस शर्तको स्वीकार कर लिया।

एक सरोवरमें च्यवनऋषि तथा अश्विनीकुमारोंने एक साथ स्नान किया और तीनों एकरूप हो गये। सुकन्यासे कहा गया—इन तीनोंमेंसे तुम अपना पति चुन लो। सुकन्या अत्यन्त दुविधामें पड़ गयी, वह पतिपरायणा थी। उसने भगवतीसे प्रार्थना की और भगवतीकी कृपासे अपने पति च्यवनऋषिको युवारूपमें प्राप्त कर लिया। च्यवनऋषि युवावस्था प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न थे, उन्होंने प्रत्युपकारकी दृष्टिसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें सोमरस-पानका अधिकारी बनानेका वचन दिया।

एक दिन महाराज शर्याति अपनी कन्याको देखनेके लिये च्यवनऋषिके आश्रममें पहुँचे। वहाँ युवा पतिके साथ अपनी कन्याको देखकर विस्मयमें पड़ गये। जब सब बातें स्पष्ट हुईं तो च्यवनमुनिके आदेशसे शर्यातिने एक यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको सोमरस-पानका अधिकारी बना दिया।

सूर्यवंशी राजाओंका पावन चरित्र— सूर्यवंशमें शर्यातिके पौत्र महाराज रेवत हुए, जो अपनी कन्याका वर जाननेके लिये पितामह ब्रह्माजीके पास सशरीर ब्रह्मलोक गये। ब्रह्माजीके आदेशसे उन्होंने अपनी कन्या रेवतीका

विवाह भगवान् श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भ्राता शेषावतार श्रीबलरामजीसे कर दिया।

इसी वंशमें ककुत्स्थ नामके प्रचण्ड पराक्रमी राजा हुए, जिन्होंने वृषभरूपधारी देवराज इन्द्रपर सवार होकर देवताओंके लिये भी अजेय दानवोंको परास्त किया था। ककुत्स्थके पुत्र राजा पृथु हुए, जो भगवान् विष्णुके अंशावतार कहे जाते हैं। इसी वंशमें यौवनाश्व नामक धार्मिक नरेश हुए, जो सन्तानहीन होनेके कारण अत्यन्त चिन्तित थे। ब्राह्मणों तथा ऋषियोंने उनपर दयाकर उनसे सन्तानके निमित्त एक यज्ञ कराया। पण्डितोंने जलसे परिपूर्ण एक कलशका पुत्रप्राप्तिके निमित्त अभिमन्त्रण किया। यह विधिपूर्वक अभिमन्त्रित जल रानीके लिये रखा गया था, जिसे प्यास लगनेके कारण भूलसे राजा यौवनाश्वने पी लिया। मन्त्रके प्रभावसे राजाने गर्भ धारण कर लिया, उनकी दाहिनी कोखका भेदन करके मान्धाता उत्पन्न हुए, जिनका पालन स्वयं देवराज इन्द्रने किया। इस वंशके सभी राजा भगवती जगदम्बाके उपासक थे। इसी वंशमें महाराज अरुण हुए, उन न्यायप्रिय सम्राट्ने धर्म और सदाचारका उल्लंघन करते देखकर अपने एकमात्र पुत्र सत्यव्रतको अपने राज्यसे निकाल दिया।

सत्यव्रतने देवीकी उपासना की, जिससे वे पुनः पिताके प्रेमभाजन बन गये। महाराज अरुणने राजकुमार सत्यव्रतको अपना लिया तथा उसे अपने निकट बैठाकर नीतिशास्त्रका उपदेश दिया—हे पुत्र! तुम सदा धर्ममें ही अपनी बुद्धि लगाना, न्यायपूर्वक प्राप्त धन ही ग्रहण करना। कभी असत्यभाषण मत करना, निन्दित मार्गका अनुसरण मत करना। तुम्हें प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये; द्यूत, मदिरा, अश्लील संगीत तथा वेश्याओंसे बचना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर मनुष्यको स्नान आदि नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर भक्तिपूर्वक पराशक्ति जगदम्बाकी आराधना करनी चाहिये। तुम वेद-वेदान्तके पारगामी आदरणीय विद्वानोंकी विधिवत् पूजा करके सुयोग्य पात्रोंको गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिका सदा दान करना। तुम कभी भी किसी मूर्ख ब्राह्मणकी पूजा मत करना और मूर्ख व्यक्तिको कभी भी भोजनसे अधिक कुछ भी मत देना। किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लंघन मत करना। राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका पालन करे और न्यायसे उपार्जित धनका निरन्तर संग्रह करे।

इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकु (सत्यव्रत)-ने कहा—मैं वैसा ही करूँगा। तत्पश्चात् महाराज अरुणने त्रिशंकुको राज्यपर विधिपूर्वक अभिषिक्त करके अपनी धर्मपत्नीके साथ वानप्रस्थ-आश्रमको ग्रहण किया।

राजा सत्यव्रत देवेश्वरी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हुए राज्यपर सम्यक् शासन करने लगे। त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए। कुछ समय बाद राजा त्रिशंकुने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रको युवराज बनाकर मानवशरीरसे ही स्वर्गसुख भोगनेका निश्चय किया। उन्होंने अपनी इच्छा महर्षि वसिष्ठजीसे व्यक्त की और इसके लिये यज्ञ करानेका आग्रह किया। वसिष्ठजीने 'मानवशरीरसे स्वर्गमें निवास अत्यन्त दुर्लभ है'—यह कहकर यज्ञ करानेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। राजा त्रिशंकुने वसिष्ठजीसे कहा कि यदि आप यज्ञ नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्यको आचार्य बनाकर यज्ञ सम्पन्न करूँगा। यह सुनकर वसिष्ठजीने क्रोधित होकर राजा त्रिशंकुको शाप दे दिया कि मरनेके बाद भी तुम किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकते। उनके शापसे राजा त्रिशंकु चाण्डाल बनकर जंगलकी ओर चले गये। जंगलमें कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वे समय व्यतीत करने लगे।

कुछ समय पूर्व विश्वामित्रजी अपनी भार्याको जंगलमें छोड़कर तपस्यामें रत थे। उन दिनों उनकी पत्नी अपने पुत्रोंके साथ अत्यधिक संकटमें पड़ गयी थी। तब सत्यव्रतने कई प्रकारसे उनकी रक्षा की। यह बात विश्वामित्रजीकी पत्नीने विश्वामित्रजीको बतायी और कहा कि इनका हमपर बड़ा उपकार है, आपको भी इनका प्रत्युपकार करना चाहिये। तदनन्तर विश्वामित्रजी सत्यव्रत (त्रिशंकु)-से मिले। सत्यव्रतने सशरीर स्वर्ग जानेकी इच्छा व्यक्त की। विश्वामित्रजीने अपने तपके प्रभावसे उन्हें सशरीर स्वर्ग भेज दिया। स्वर्गलोकमें उनका चाण्डालशरीर देखकर देवतागण नाराज हुए तथा इन्द्रने उन्हें वापस

नीचेकी ओर धकेल दिया। यह बात विश्वामित्रजीको मालूम होते ही उन्होंने अपने तपोबलसे उन्हें बीचमें ही रोक दिया तथा नये स्वर्गलोककी सृष्टि करनी चाही। इन्द्रको यह बात मालूम होनेपर उन्होंने विश्वामित्रजीसे क्षमा-प्रार्थना की और उनके इच्छानुसार वे त्रिशंकुको दिव्य शरीरवाला बनाकर अपनी पुरी ले गये।

राजा हरिश्चन्द्रकी कथा—राजा हरिश्चन्द्र राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु)-के पुत्र थे, अपने पिताके स्वर्गगमनसम्बन्धी समाचारको सुनकर वे अत्यन्त हर्षित हुए और राज्यका शासन करने लगे। बहुत समय व्यतीत होनेपर भी जब उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई तो वे अत्यन्त चिन्तित हुए। उन्होंने महर्षि वसिष्ठसे इसके लिये प्रार्थना की। वसिष्ठजीने सन्तानप्राप्तिके लिये वरुणदेवकी आराधनाका उपदेश किया। वरुणदेवकी उपासना करनेपर वे प्रसन्न होकर राजाके समक्ष प्रकट हुए। राजा हरिश्चन्द्रने उनसे सन्तानप्राप्तिका वर माँगा। 'पुत्र हो जानेपर उसे बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें'—इस शर्तके साथ वरुणदेवने राजाको पुत्रप्राप्तिका वर प्रदान किया। राजा हरिश्चन्द्रने भी सन्तानहीन न रहूँ—यह सोचकर इसे स्वीकार कर लिया।

कुछ समय बाद पुत्र हो जानेपर वरुणदेव यज्ञके लिये प्रकट हुए, राजाने जननाशौचसे निवृत्त होनेके अनन्तर यज्ञ करनेकी बात कही। अशौचनिवृत्तिके बाद राजाने बच्चेके दाँत आनेतकका बहाना बनाया। दाँत आ जानेपर राजाने चूडाकर्मसंस्कारके बाद यज्ञ करनेका वरुणदेवको आश्वासन दिया। चूडाकरणसंस्कार सम्पन्न होनेपर राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवके प्रकट होनेपर उनसे प्रार्थना की कि बिना उपनयनसंस्कारके द्विजत्वकी प्राप्ति नहीं होती, अतः इसके बाद मैं अवश्य यज्ञ करूँगा। उपनयनसंस्कारके अनन्तर राजाके पुत्र राजकुमार रोहित अपनी बलिकी बातसे सशंकित होकर नगरसे बाहर वनकी ओर भाग गये। राजा अत्यन्त चिन्तित हुए। वरुणदेव भी प्रकट हुए, पुत्रको न पाकर उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर राजा हरिश्चन्द्रको जलोदर रोगसे ग्रस्त होनेका शाप दे दिया। जलोदर रोगके कष्टसे अत्यधिक पीड़ित राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे इस रोगके नाशका निश्चित उपाय पूछा। वसिष्ठजीने उपाय बताया कि धनके द्वारा खरीदे गये पुत्रसे आप यज्ञ कीजिये, इससे आप शापसे मुक्त हो जायँगे।

राजा हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त नामका एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था, उसने धनके लोभमें अपने पुत्र शुनःशेपको बलिपशुके निमित्त राजाको बेच दिया। यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधे गये उस बालकको अत्यधिक व्याकुल देखकर तथा उसका कोलाहल सुनकर विश्वामित्रजी दयार्द्र हो गये। उन्होंने राजासे शुनःशेपको छोड़नेका अनुरोध किया तथा कहा कि दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। यज्ञोंमें हिंसा करनेका जो विधान बना, उसका उद्देश्य जिह्वालोलुपोंके जिह्वा-स्वादकी पूर्तिके माध्यमसे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना है, किंतु यथासम्भव हिंसासे विरत रहना ही शास्त्रका आशय है। अपना कल्याण चाहनेवालेको अपने शरीरकी रक्षाके लिये दूसरेके शरीरको नष्ट नहीं करना चाहिये। जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसीसे सन्तोष करता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।* हे नृपश्रेष्ठ! सभी प्राणियोंमें आत्मभावका चिन्तन करना चाहिये, जिस प्रकार अपनेको देह प्रिय होती है, उसी प्रकार सभी जीवोंको अपना शरीर प्रिय होता है। जो व्यक्ति अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये किसी प्राणीका वध करता है, दूसरी योनिमें जन्म लेकर वही जीव अपने संहर्ताका वध कर देता है। राज्यमें जो कोई व्यक्ति पापकर्म करता है, तो उसके पापका छठा अंश राजाको भोगना पड़ता है, अतः राजाको इससे बचना चाहिये।

विश्वामित्रजीकी इन बातोंको सुनकर भी राजाने

---

* दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि॥
रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय। आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृन्तनम्॥
न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता। दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केन च॥
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः। (श्रीमद्देवीभा० ७। १६। ३९—४२)

शुन:शेपको मुक्त नहीं किया, तब विश्वामित्रजीने शुन:शेपके निकट जाकर उसे वरुणदेवका मन्त्र प्रदान किया तथा वरुणदेवका स्मरण करते हुए मन्त्र-जप करनेका उपदेश दिया। शुन:शेपके इस प्रकार मन्त्र-जप करनेपर वरुणदेव प्रकट हुए, राजाने भी उनसे विनती करते हुए क्षमा-याचना की। वरुणदेवने दयार्द्र होकर शुन:शेपको बन्धनमुक्त कराया और राजाको भी रोगमुक्त कर दिया।

राजा हरिश्चन्द्र अपनी स्त्री तथा पुत्रके साथ आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे। कुछ समय बाद महर्षि विश्वामित्र कुछ कारणवश उनसे रुष्ट हो गये। वे कपटपूर्वक एक ब्राह्मणका वेश बनाकर राजासे मिले। राजाने उनसे कहा—मैंने राजसूय यज्ञ किया है, आप जो भी कुछ माँगेंगे, मैं उसे पूरा करूँगा। उस ब्राह्मणके प्रभावमें आकर राजाने अपना सम्पूर्ण राज्य विश्वामित्रको दान कर दिया। बादमें विश्वामित्रजीने इस दानकी सांगता-सिद्धिहेतु ढाई भार स्वर्णकी दक्षिणा देनेके लिये कहा; क्योंकि किसी भी दानकी सांगता-दक्षिणाके बिना वह दान सफल नहीं होता। राजा हरिश्चन्द्र अत्यधिक चिन्ताग्रस्त हो गये, दक्षिणाके लिये विश्वामित्रके क्रूर वचनोंको सुनकर वे अपनी पत्नी तथा पुत्रके साथ काशीपुरी आये। अपने पतिको अत्यधिक चिन्ताग्रस्त देखकर उनकी पत्नीने उनसे कहा—हे महाराज! आप चिन्ता छोड़कर अपने धर्मका पालन कीजिये। अपने सत्य वचनका अनुपालनरूप जो धर्म है, उससे बढ़कर दूसरा कोई अन्य धर्म मनुष्यके लिये नहीं है। जिस व्यक्तिका वचन मिथ्या हो जाय; उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सभी कृत्य निष्फल हो जाते हैं।

इसी बीच एक वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण वहाँ आ गये, रानीने राजासे कहा—ब्राह्मण तीनों वर्णोंका पिता कहा जाता है, पुत्रके द्वारा पितासे धन लिया जा सकता है; अत: इनसे धनके लिये प्रार्थना की जाय। राजाने उत्तर दिया—मैं क्षत्रिय हूँ, इसलिये किसीसे दान लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता। याचना करना ब्राह्मणोंका कार्य है, क्षत्रियोंका नहीं। ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है और सर्वदा पूजनीय है। इसलिये गुरुसे याचना नहीं करनी चाहिये।

इसपर रानीने कहा—अपने सत्यकी रक्षाके लिये आप मुझे बेचकर मुनिकी दक्षिणा चुका दें। उसी समय वहाँ एक ब्राह्मण प्रकट हुए, जिन्होंने ग्यारह करोड़ स्वर्ण-मुद्रा देकर रानी तथा राजकुमार रोहितको खरीद लिया, परंतु यह दक्षिणा विश्वामित्रके लिये पूर्ण नहीं थी। राजाने उनकी दक्षिणाको पूर्ण करनेके लिये स्वयंको भी बेचनेका प्रयास किया, उसी समय चाण्डालका रूप धारणकर धर्मदेव वहाँ आ पहुँचे। राजा चाण्डालके हाथों बिकना नहीं चाहते थे, परंतु विश्वामित्रके क्रोधयुक्त क्रूर वचनोंके कारण उन्होंने विश्वामित्रकी आज्ञासे चाण्डालका दासत्व स्वीकार कर लिया। इसके बदलेमें उन्हें दक्षिणाके लिये पूर्ण धनकी प्राप्ति हो गयी।

राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालने श्मशानमें मृत व्यक्तिका वस्त्र तथा कर आदि लेनेका काम सौंप दिया।

एक समयकी बात है, राजकुमार रोहित खेलते हुए कुश उखाड़ने लगा। उसी समय एक सर्पने बालक रोहितको डस लिया। उसकी मृत्यु हो गयी। करुण विलाप करती हुई रानी शैब्या उसके निष्प्राण शरीरको लेकर श्मशान आयी, वहाँ उसने राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके रूपमें देखा। प्रारम्भमें रानी अपने पतिको पहचान नहीं पायी तथा राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी पत्नी और पुत्रको नहीं पहचान सके। रानीने जब विलाप करना प्रारम्भ किया तो कुछ देर बाद राजा अपनी पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा टूटनेपर पति-पत्नी दोनोंने दु:खसे विह्वल होकर यह निश्चय किया कि पुत्रकी चितापर हम दोनों भी अपना शरीर त्याग देंगे। जैसे ही उन्होंने चिता निर्माणकर भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए चितामें प्रवेश करना चाहा, उसी समय तत्काल पितामह ब्रह्मा, इन्द्रादि सभी देवगण धर्मदेवको आगेकर वहाँ उपस्थित हो गये। देवगणोंने राजा हरिश्चन्द्रकी अत्यधिक प्रशंसा की और कहा कि आप अपनी भार्या और पुत्रको साथमें लेकर स्वर्गके लिये प्रस्थान कीजिये। तत्पश्चात् चिताके मध्यभागमें रोहितपर अपमृत्युका नाश करनेवाली अमृतमयी वृष्टि होने लगी तथा विपुल पुष्पोंकी वर्षा एवं दुन्दुभियोंकी तेज ध्वनि होने लगी, मृतपुत्र रोहित जीवित हो गया।

राजा हरिश्चन्द्रने कहा कि मैं अयोध्यावासियोंको

छोड़कर अकेले स्वर्गलोक नहीं जाऊँगा, सबको साथ लेकर ही जा सकता हूँ। इन्द्रकी अनुमति मिलनेपर पुत्र रोहितका राजतिलककर राजा हरिश्चन्द्र समस्त अयोध्या-वासियोंके साथ विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्ग चले गये।

भगवती शताक्षी और शाकम्भरीके प्राकट्यकी कथा—प्राचीनकालमें दुर्गम नामक एक अत्यन्त भयंकर महादैत्य था, ब्रह्माजीके वरदानसे समस्त वेदमन्त्र उसके पास आ गये और ब्राह्मणोंको विस्मृत हो गये। वेदविहीन होनेसे स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदिका लोप हो गया। इसलिये देवताओंको हव्य मिलना और पृथ्वीपर वर्षा होना—दोनों बन्द हो गये। चारों ओर अकाल पड़ गया, समस्त प्राणी असमय कालकवलित होने लगे। जगत्‌की इस विषम स्थितिको देखकर ब्राह्मणोंने हिमालयपर्वतपर जाकर भगवतीकी स्तुति की और उनसे दुःख दूर करनेकी प्रार्थना की। भगवती उनकी करुणापूर्ण स्थिति देखकर द्रवित हो गयीं। उन्होंने शताक्षी-रूप धारण किया, उनके शत नेत्रोंसे अविरल जलधारा प्रवाहित होने लगी, जिससे धरती प्लावित हो गयी। उनके हाथोंमें विभिन्न प्रकारके शाक और फल थे, अतः उन्हें शाकम्भरी कहा जाने लगा। इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये खाद्य-व्यवस्थाकर और पृथ्वीको सस्य-श्यामला बना भगवतीने दुर्गम दैत्यसे युद्धकर उसका संहार कर दिया। उन शक्तिस्वरूपा भगवतीके लिये उस क्षुद्र दैत्यका वध करना कौन बड़ी बात है; क्योंकि उन्हींकी शक्तिसे तो भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु भी शक्तिमान् होते हैं।

शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा—भगवान् शंकरके प्रति द्वेषबुद्धि रखनेवाले दक्षप्रजापतिके यज्ञमें भगवती सतीने आत्मदाह कर दिया था, उस समय भगवान् शंकरकी कोपाग्निसे प्रलयकी-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी, परंतु देवताओंकी प्रार्थनापर वे शान्तचित्त हुए। इसके अनन्तर भगवान् शिवने यज्ञस्थलपर जाकर भगवती सतीके शरीरको अपने कन्धेपर रख लिया और उन्मत्त होकर भ्रमण करने लगे। तब भगवान् विष्णुने बाणोंसे सतीके विभिन्न अंगोंको काटकर गिरा दिया। एक सौ आठकी संख्यामें कटे वे अंग जहाँ-जहाँ गिरे, वहाँ-वहाँ शक्तिपीठ उत्पन्न हो गये। उन-उन स्थानोंपर भगवान् शंकर अनेक विग्रह धारण करके प्रकट हो गये। भगवान् शिवने देवताओंसे कहा कि जो लोग इन स्थानोंपर महान् श्रद्धाके साथ भगवती शिवाकी आराधना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा; क्योंकि उन स्थानोंपर साक्षात् भगवती पराम्बा अपने अंगोंमें सदा निहित हैं। इन तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये तथा विधिपूर्वक भगवतीकी विशिष्ट पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारिकाओं तथा वटुओं आदिको भोजन कराना चाहिये।

भगवती पार्वतीके प्राकट्यकी कथा—सतीके दग्ध हो जानेपर भगवान् शिव व्याकुल होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। अन्तमें मनको समाधिस्थ करके भगवतीके ध्यानमें निमग्न हो गये। उसी समय तारक नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी तपस्याद्वारा ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त कर लिया कि भगवान् शंकरके औरस पुत्रद्वारा ही उसकी मृत्यु हो सकेगी। वरके प्रभावसे उन्मत्त वह असुर महान् अत्याचारी हो गया था। यह देखकर भगवान् विष्णुने देवताओंकी प्रार्थनापर उन्हें भगवतीकी शरणमें जानेकी सलाह दी। देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने कहा—'गौरी नामक मेरी शक्ति हिमालयके घर उत्पन्न होगी, आपलोग उसे शिवको प्रदान करा दीजियेगा।' इस प्रकार हिमालयकी पुत्रीके रूपमें भगवतीका पार्वती-अवतार हुआ।

भगवतीद्वारा हिमालयको देवीगीताका उपदेश—पराम्बा भगवतीने हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका तात्त्विक विवेचन किया। तत्पश्चात् देवीने अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए हिमालय तथा देवताओंको अपने विराट्‌रूपके दर्शन कराये, जिसे देखकर देवगण भयभीत हो गये, इसपर भगवतीने पुनः अपना सौम्यरूप धारण कर लिया। देवीने हिमालयको अपने मन्त्र **'ह्रीं'** का उपदेश दिया तथा अष्टांगयोग और कुण्डलिनीजागरणकी विधि बतायी। इसके बाद उन्होंने परब्रह्मके स्वरूप और अपनी भक्तिकी महिमा तथा उसके प्रकारका वर्णन किया; साथ ही उन्होंने अपने तीर्थों, व्रतों और पूजन-विधान का वर्णन करनेके अनन्तर बताया कि यह देवीगीता (अध्याय ३२—४०) अत्यन्त गोपनीय तथा

समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। ऐसा कहकर वे भगवती वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और देवीके दर्शनसे सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तदनन्तर वे देवी हैमवती हिमालयके यहाँ उत्पन्न हुईं, जो गौरी नामसे प्रसिद्ध हुईं। बादमें वे शंकरजीको प्रदान की गयीं। तत्पश्चात् कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुरका संहार किया।

अष्टम स्कन्ध

अष्टम स्कन्धका प्रारम्भ नारदजीकी इस जिज्ञासासे होता है कि यह जगत् किससे उत्पन्न होता है, किससे इसकी रक्षा होती है, किसके द्वारा इसका संहार होता है? किस पूजासे, किस जपसे और किस ध्यानसे तथा किस ज्ञानसे इस मोहमयी मायाका नाश हो जाता है। नारदजीके प्रश्नके उत्तरमें श्रीनारायण कहते हैं—इस जगत्का एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा ही हैं। तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-से युक्त होनेके कारण वे भगवती ही सम्पूर्ण जगत्की रचना करती हैं, वे ही पालन करती हैं और वे ही संहार करती हैं।

प्रजाकी सृष्टिके लिये मनुका देवी-आराधन— स्वायम्भुव मनु पितामह ब्रह्माजीके पुत्र थे। उनकी पत्नीका नाम शतरूपा था। ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे प्रजाकी सृष्टिके लिये भगवती जगदम्बाकी भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बाने उन्हें वरदान दिया कि प्रजासृष्टिका तुम्हारा कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न होगा और इसमें निरन्तर वृद्धि होती रहेगी।

वराहावतारकी कथा— मनुने जब प्रजासृष्टि करनी चाही तो देखा कि पृथ्वी जलमें डूबी हुई है—यह बात उन्होंने ब्रह्माजीसे बतायी। इसपर ब्रह्मा आदिपुरुषका चिन्तन करने लगे। उनके ध्यान करते ही सहसा उनकी नासिकाके अग्रभागसे एक अंगुष्ठ-परिमाणका वाराह-शिशु निकला, जो देखते-ही-देखते पर्वताकार हो गया। वहाँ उपस्थित देवताओं और विप्रवरोंने उत्तम स्तोत्रों तथा ऋक्, साम और अथर्ववेदसे सम्भूत पवित्र सूक्तोंसे आदिपुरुषकी स्तुति प्रारम्भ कर दी। उनकी स्तुति सुनकर भगवान् श्रीहरि उन्हें अनुग्रहीत करते हुए जलमें प्रविष्ट हो गये। उस समय अगाध जलके भीतर प्रविष्ट तथा सभी प्राणियोंको आश्रय देनेवाली उस पृथ्वीको देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने दाढ़ोंपर उठा लिया। उन्हें देखकर देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत होनेपर भगवान् श्रीहरिने उस समय वहाँ आये महान् असुर तथा भयंकर दैत्य हिरण्याक्षको अपनी गदासे मार डाला। तत्पश्चात् भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको अपनी दाढ़से उठाकर लीलापूर्वक जलपर स्थापित कर दिया। इसके बाद वे लोकनाथेश्वरभगवान् अपने लोकको चले गये।

महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन— नारदजीसे श्रीनारायण कहते हैं—पृथ्वीको यथास्थान प्रतिष्ठित करके भगवान् जब वैकुण्ठ चले गये तब ब्रह्माजीने अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको समुचितरूपसे प्रजाओंकी सृष्टिकी प्रेरणा करते हुए यह उपदेश दिया—शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका आचरण करो तथा वर्णाश्रम-व्यवस्थाका पालन करो और यज्ञके स्वामी परमपुरुषका भजन करो। इस क्रमसे प्रवृत्त रहनेपर प्रजाकी वृद्धि होती रहेगी।

पिताकी इस आज्ञाको पृथ्वीपति स्वायम्भुव मनुने हृदयमें धारण कर लिया और वे प्रजाकी सृष्टि करने लगे। मनुसे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और आकूति, देवहूति तथा प्रसूति—ये तीन कन्याएँ हुईं। उनकी प्रसूति नामक कन्याका दक्षप्रजापतिसे विवाह हुआ, जिनकी कन्याओंके सन्तानके रूपमें देवता, पशु और मानव आदि उत्पन्न हुए। मनुके पुत्र महाराज प्रियव्रतने पृथ्वीकी सात बार प्रदक्षिणा की, जिससे उनके रथके पहियोंके निशानसे पूरी पृथ्वीमें सात समुद्र और सात द्वीप बन गये। उन महाराज प्रियव्रतके दस पुत्र हुए, उनमेंसे तीन पुत्र वीतराग होकर परमहंस भावसे रहने लगे और शेष सात पुत्रोंको उन्होंने एक-एक द्वीपका अधिपति बना दिया। उन सातों द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप।

जम्बूद्वीपमें कुल नौ वर्ष हैं, भारतवर्ष इसीके अन्तर्गत है। अन्य वर्षोंके नाम इस प्रकार हैं—इलावृतवर्ष, भद्राश्ववर्ष, हरिवर्ष, केतुमालवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष, उत्तरकुरुवर्ष तथा किम्पुरुषवर्ष। इन सभी वर्षोंमें भगवान् श्रीहरिके विभिन्न रूपोंकी उपासना होती रहती है।

गंगावतरणका आख्यान—सुमेरुपर्वतके शिखरपर ठीक मध्यमें ब्रह्माजीकी पुरी है। यह दस हजार योजनके विस्तारमें विराजमान है।

सर्वव्यापी भगवान् विष्णुके बायें पैरके अँगूठेके नखसे आघातके कारण ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुए छिद्रके मध्यसे गंगाजी प्रकट हुईं और वे स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण देवनदियोंकी स्वामिनी भगवती गंगा स्वर्गके शिखरपर जहाँ आयी थीं, वह स्थान तीनों लोकोंमें विष्णुपद नामसे विख्यात है। मोक्षस्वरूपिणी ये गंगा तपस्या करनेवाले पुरुषोंको सिद्धि देनेवाली हैं—यह जानकर सिद्धगण उनमें निरन्तर स्नान करते रहते हैं। विष्णुपदसे चलकर गंगा चन्द्रमण्डलका भेदन करती हुईं ब्रह्मलोकमें पहुँचीं; वहाँसे सीता, चतुः (चक्षु), अलकनन्दा और भद्रा—इन चार नामोंसे चारों दिशाओंमें प्रवाहित हुईं। अन्तमें वे नदियोंके स्वामी समुद्रमें मिल गयीं।

नौ वर्षोंमें भारतवर्ष कर्मक्षेत्र कहा गया है। अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्गभोग प्रदान करनेवाले हैं। ये वर्ष स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके शेष पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं।

जम्बूद्वीपके विभिन्न वर्षोंमें आदिपुरुष नारायणके विभिन्न स्वरूपोंकी उपासना—जम्बूद्वीपके सभी नौ वर्षोंमें आदिपुरुष नारायण लोकोंपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे भगवतीकी आराधना करते हुए लोकोंसे पूजा स्वीकार करनेके निमित्त अपनी विभिन्न मूर्तियोंके रूपमें समाहित होकर वहाँ विराजमान रहते हैं।

इलावृतवर्षमें भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीके नेत्रसे उत्पन्न भवरूपमें अपनी भार्या भवानीके साथ निवास करते हैं। वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न अपने करोड़ों गणोंसे घिरे हुए देवेश्वर भगवान् शिव सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ तामस प्रकृतिवाली अपनी ही **संकर्षण** नामक मूर्तिका एकाग्रमनसे ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करते हुए आराधना करते हैं।

इसी प्रकार **भद्राश्ववर्ष**में भद्रश्रवा नामक धर्मपुत्र भगवान् वासुदेवकी हयग्रीव नामसे प्रसिद्ध हयमूर्तिको अपने हृदयमें धारण करते हुए **हयग्रीवरूप** देवेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करते हैं और उनके गुणोंका संकीर्तन करते हैं।

हरिवर्षमें पापोंका नाश करनेवाले, योगसे युक्त आत्मावाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले **भगवान् नृसिंह** प्रतिष्ठित हैं। भगवान्‌के गुणतत्त्वोंको जाननेवाले परमभागवत असुर प्रह्लाद उनके दयामय रूपका दर्शन करते हुए भक्ति-भावसे युक्त होकर उनकी स्तुति करते हैं।

भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! अखिल जगत्‌का कल्याण हो, सभी प्राणी अपने मनमें एक-दूसरेके कल्याणका चिन्तन करें। घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धु-बान्धवोंमें हमारी आसक्ति न हो; यदि आसक्ति हो तो भगवान्‌के प्रियजनोंमें हो। भगवान्‌में जिस पुरुषकी निष्काम भक्ति होती है; उस पुरुषके हृदयमें धर्म, ज्ञान आदि सभी गुणोंसहित देवता निवास करते हैं। जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही सभी देहधारियोंकी आत्मा हैं। इस प्रकार दैत्यपति प्रह्लाद भगवान् नृसिंहकी भक्तिपूर्वक निरन्तर स्तुति करते रहते हैं।

केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि **कामदेव**का रूप धारण करके प्रतिष्ठित हैं। इस वर्षकी अधीश्वरी समुद्रतनया लक्ष्मीजी निरन्तर उनकी उपासना करती हैं।

रमा कहती हैं—हे भगवन्! जो स्त्री आपके चरणकमलोंके पूजनकी कामना करती है और अन्य वस्तुकी अभिलाषा नहीं करती, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, किंतु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और भोगके पश्चात् जब वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे दुःखी होना पड़ता है।

इन्द्रियसुख पानेका विचार रखनेवाले ब्रह्मा, रुद्र, देव तथा दानव आदि मेरी (लक्ष्मीकी) प्राप्तिके लिये कठिन तप करते हैं, किंतु आपके चरणकमलोंकी उपासना करनेवालेके अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है। इस प्रकार लक्ष्मीजी तथा अन्य प्रजापति आदि प्रमुख अधीश्वर भी कामनासिद्धिके लिये कामदेवरूपधारी श्रीहरिकी

स्तुति करते हैं।

रम्यकवर्षमें मनुजी भगवान् श्रीहरिकी देव-दानव-पूजित सर्वश्रेष्ठ **मत्स्यमूर्ति**की निरन्तर इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं।

मनुजी कहते हैं—हे अजन्मा प्रभो! जब ऊँची लहरोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्र विद्यमान था, तब आप औषधियों और लताओंकी निधिस्वरूप पृथ्वी तथा मुझको लेकर उस समुद्रमें उत्साहपूर्वक क्रीडा कर रहे थे। जगत्के समस्त प्राणिसमुदायके नियन्ता आप भगवान् मत्स्यको नमस्कार है।

इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ मनुजी सभी संशयोंको समूल समाप्त कर देनेवाले मत्स्यरूपमें अवतीर्ण श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक उपासना करते हुए यहाँ प्रतिष्ठित रहते हैं।

हिरण्मयवर्षमें भगवान् श्रीहरि **कूर्मरूप** धारण करके विराजमान हैं। यहाँ अर्यमाके द्वारा उन योगेश्वर भगवान्की पूजा तथा स्तुति की जाती है।

अर्यमा कहते हैं—हे प्रभो! अनेक रूपोंमें दिखायी देनेवाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका रूप है। एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, चर-अचर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र—इन नामोंसे विख्यात हैं। विद्वानोंने असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंवाले आपमें जिन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या निश्चित की है; वह भी वस्तुतः आपका स्वरूप है। ऐसे सांख्यसिद्धान्तस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार अर्यमा हिरण्मयवर्षके अन्य अधीश्वरोंके साथ सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले कूर्मरूप भगवान् श्रीहरिकी स्तुति तथा उनका गुणानुवाद करते हैं।

उत्तरकुरुवर्षमें प्रेमरससे परिपूर्ण पृथ्वीदेवी दैत्योंका नाश करनेवाले **यज्ञपुरुष आदिवराहरूप** श्रीहरिकी उपासना करती हैं।

किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्जी सम्पूर्ण जगत्के शासक आदिपुरुष **भगवान् श्रीसीतारामजी**की इस प्रकार स्तुति करते हैं—हे प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं। त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। न उत्तम कुलमें जन्म, न सुन्दरता, न वाक्-चातुर्य, न तो बुद्धि और न तो श्रेष्ठ योनि ही आपकी प्रसन्नताके कारण हो सकते हैं। यही कारण है कि हे भगवन्! आपने इन सभी गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है।

इस प्रकार किम्पुरुषवर्षमें वानरश्रेष्ठ हनुमान् भगवान् श्रीरामकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए उनके गुण गाते हैं।

भारतवर्ष और उसकी महिमा— भारतवर्षमें आदिपुरुष **श्रीनारायण** स्वयं विराजमान रहते हैं तथा देवर्षि नारद विभिन्न प्रकारसे उनकी स्तुति करते हैं। श्रीनारायण भारतवर्षकी अनेक नदियों तथा पर्वतोंका वर्णन करते हैं, इसके साथ ही देवर्षि नारदके समक्ष भारतवर्षकी महिमाका भी वर्णन करते हैं।

श्रीनारायण कहते हैं—भारतवर्षमें निवास करनेवाले सभी लोगोंको अनेक प्रकारके भोग सुलभ होते हैं, अपने वर्णधर्मके नियमोंका पालन करनेसे मोक्षतक निश्चित-रूपसे प्राप्त हो जाता है, इसी कारण स्वर्गके निवासी वेदज्ञ मुनिगण भारतवर्षकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं— अहो! जिन जीवोंने भारतवर्षमें जन्म प्राप्त किया है, उनका कितना पुण्य है? उनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हमलोग भी लालायित रहते हैं।

हम सबने कठोर यज्ञ, तप, व्रत, दान आदिके द्वारा जो यह तुच्छ स्वर्ग प्राप्त किया है, इससे क्या लाभ! स्वर्गके निवासियोंकी आयु एक कल्पकी होनेपर भी उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ता है, इसकी अपेक्षा भारतभूमिमें अल्प आयुवाला होकर भी जन्म लेना श्रेष्ठ है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष अपने इस मर्त्यशरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवान्को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर लेते हैं। भारतवर्षमें मानवयोनि प्राप्त करके भी जो प्राणी आवागमनरूप बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न नहीं करते, वे व्याघ्रकी फाँसीसे मुक्त होकर भी फल आदिके लोभसे

जंगली पशुओंकी भाँति पुनः बन्धनमें पड़ जाते हैं।

अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ और पूर्तकर्मों (बावली, कुँआ, धर्मशाला आदि बनवाने)-से यदि कुछ भी पुण्य अवशिष्ट हो तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्‌की स्मृतिसे युक्त मनुष्यजन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवाले प्राणियोंका परम कल्याण करते हैं।

श्रीनारायण कहते हैं—हे नारद! इस प्रकार स्वर्गको प्राप्त देवता, सिद्ध और महर्षिगण भारतवर्षकी उत्तम महिमाका गान करते हैं।

खगोलवर्णन—त्रिलोकीकी सीमाका निर्धारण करनेके लिये भगवान्‌ने लोकालोकपर्वतका निर्माण किया। इस पर्वतके एक ओरके लोक प्रकाशित होते हैं और दूसरी ओर अन्धकार बना रहता है।

पृथ्वी तथा स्वर्गके बीच ब्रह्माण्डके केन्द्रमें सूर्यकी स्थिति है। ये जीवसमूहोंकी आत्मा और नेत्रेन्द्रियके स्वामी हैं। ये अपने तेजसे तीनों लोकोंको प्रकाशित तथा प्रतप्त करते हैं। शीघ्र, सम तथा मन्द—ये इनकी तीन गतियाँ हैं। जब इनका रथ उत्तरायणमार्गपर रहता है तब ध्रुवद्वारा उसका कर्षण होनेसे उसकी गति मन्द हो जाती है, जिससे दिनकी अवधि बड़ी और रात्रि छोटी होती है। इसके विपरीत दक्षिणायनमार्गपर इनकी शीघ्र गति होती है, जिससे दिन छोटा और रात्रि बड़ी होती है। विषुवरेखापर इनकी सम गति रहती है।

सूर्यसे एक लाख योजनकी ऊँचाईपर चन्द्रमा स्थित हैं। चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है, उससे दो लाख योजन ऊपर शुक्रग्रह तथा शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर बुध ग्रह है। बुधसे दो लाख योजन ऊपर मंगल तथा उससे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति है। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनि तथा शनिसे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल है, ये सप्तर्षिगण ध्रुवलोककी प्रदक्षिणा करते हैं, जो उनसे तेरह लाख योजन ऊपर है। परमभागवत ध्रुव यहाँ विराजमान हैं। सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल है, इससे नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके लोक हैं। इन लोकोंसे नीचे यक्षों, राक्षसों, भूत, प्रेत और पिशाचोंके लोक हैं। इससे नीचे अन्तरिक्ष और अन्तरिक्षसे सौ योजन नीचे पृथ्वी है।

अधोलोकोंका वर्णन—पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं, प्रत्येक विवर दस हजार योजन लम्बा, चौड़ा और गहरा है। इनके नाम क्रमशः अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल हैं। दानवशिल्पी मयने इनमें अनेक भव्य प्रासादोंका निर्माण किया है, जिनमें महाबली दैत्य, नाग तथा दानव रहते हैं। सुतललोकमें भक्तश्रेष्ठ बलिका निवास है, जिनके द्वारपालके रूपमें स्वयं श्रीहरि विराजमान रहते हैं। पाताललोकसे तीस हजार योजन नीचे भगवान् अनन्त विराजमान हैं। यह गोलाकार समग्र भूमण्डल उनके सिरपर एक सरसोंके दानेकी भाँति सुशोभित होता है।

नरकों तथा नरक प्रदान करनेवाले विविध पापोंका वर्णन—त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें पृथ्वीसे नीचे तथा अतललोकसे ऊपर पितृलोक है, वहाँ पितृराज भगवान् यम अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं। वे मृतप्राणियोंके कर्मोंके अनुसार फलका विधान करते हैं तथा पापियोंको यातना भोगनेके लिये विभिन्न नरकोंमें भेजते हैं। ये नरक बड़े भयंकर हैं।

नारदजीके प्रश्न करनेपर श्रीनारायण विभिन्न नरकोंको प्राप्त करानेवाले पापोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

जो पुरुष दूसरेके धन, स्त्री और सन्तानका हरण करता है, वह भयानक 'तामिस्र' नामक नरकमें गिराया जाता है। जो व्यक्ति किसीके पतिको धोखा देकर उसकी स्त्रीके साथ भोग करता है, वह यमदूतोंद्वारा 'अन्धतामिस्र' नरकमें गिराया जाता है। यह शरीर ही मैं हूँ और यह धन, स्त्री-पुत्र आदि मेरे हैं—ऐसा सोचकर जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करता हुआ केवल अपने परिवारके भरण-पोषणमें प्रतिदिन लगा रहता है, वह स्वार्थलोलुप प्राणी 'रौरव' नरकमें गिरता है।

अत्यन्त क्रोधी, निर्दयी तथा मूर्ख पुरुष जो पशु-पक्षियोंको मारकर उनका मांस पकाता है, यमराजके दूत उसे 'कुम्भीपाक' नरकमें डालते हैं।

जो अपने पिता, विप्र तथा ब्राह्मणसे द्रोह करता है,

वह 'कालसूत्र' नामक नरकमें डाला जाता है।

विपत्तिका समय न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डके मार्गका आश्रय लेता है, उसे यमदूत 'असिपत्रवन' नरकमें डाल देते हैं।

जो राजा अथवा राजपुरुष अधर्मका सहारा लेकर प्रजाको दण्डित करता है, वह 'सूकरमुख' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो पुरुष खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह 'अन्धकूप' नामक नरकमें गिरता है।

जो कुछ भी धन आदि प्राप्त हो, उसे शास्त्रविहित पंचयज्ञोंमें विभक्त किये बिना जो भोजन करता है, वह 'कृमिभोजन' नामक नरकमें गिरता है।

जो प्राणी किसीसे चोरी या बलात् रत्न छीन लेता है, उसे 'सन्दंश' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो पुरुष अथवा स्त्री अगम्यके साथ समागम करते हैं, यमदूत उन्हें 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं।

जो घोर पापी मनुष्य जिस किसीके साथ व्यभिचार करता है, उसे 'शाल्मलि' नरकमें गिराया जाता है।

जो राजा या राजपुरुष पाखण्डी बनकर धर्मकी मर्यादा तोड़ते हैं, वे 'वैतरणी' नामक नरकमें गिरते हैं।

जो लोग सदाचारके नियमोंसे विमुख तथा शौचाचारसे रहित होकर शूद्राओंके पति बन जाते हैं तथा निर्लज्जतापूर्वक पशुवत् आचरण करते हैं, यमराजके दूत उन्हें विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे युक्त 'पूयोद' नामक नरकमें गिराते हैं।

जो द्विजातिगण कुत्ते और गधे आदिको पालते हैं तथा शास्त्रके विपरीत पशुओंका वध करते हैं, उन्हें यमदूत 'प्राणरोध' नामक नरकमें गिराकर बाणोंसे वेधते हैं।

जो दम्भी मनुष्य अभिमानपूर्वक यज्ञोंका आयोजनकर उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें 'विशसन' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो मूर्ख द्विज कामसे मोहित होकर सवर्ण भार्याको वीर्यपान कराता है, उसे 'लालाभक्ष' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो चोर अथवा राजपुरुष आग लगाते हैं, विष देते हैं, दुश्मनोंकी सम्पत्ति नष्ट करते हैं, गाँव तथा धनिकोंको लूटते हैं, वे 'सारमेयादन' नामक नरकमें गिरते हैं।

जो दान और धनके आदान-प्रदानमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते हैं, वे 'अवीचि' नामक भयंकर नरकमें गिरते हैं।

जो ब्राह्मण अथवा अन्य कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय और वैश्य सोमपान करता है, उसका 'अयःपान' नामक नरकमें पतन होता है।

जो द्विज अपने घर पधारे हुए अतिथियोंको पापपूर्ण दृष्टिसे देखता है, उसे यमराजके सेवक 'पर्यावर्तन' नरकमें गिराते हैं।

श्रीनारायण कहते हैं—पापकर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना देनेके लिये ये अनेक प्रकारके नरक हैं। इसी प्रकार और भी सैकड़ों तथा हजारों नरक हैं, उनमेंसे कुछ ही बताये गये हैं। बहुत-से नरकोंका वर्णन नहीं किया गया है। पापी मनुष्य अनेक यातनाओंसे भरे इन नरकोंमें जाते हैं और धर्मपरायणलोग सुखप्रद लोकोंमें जाते हैं।

देवीका पूजन तथा आराधन करनेवाले सदाचारी पुरुषको नरकमें नहीं जाना पड़ता। सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा संसारसागरसे मनुष्यका उद्धार कर देती हैं।

देवीकी उपासनाके विविध प्रसंग—भगवती जगदम्बाका पूजन प्रत्येक नर-नारीको अवश्य करना चाहिये। उनके पूजनमें प्रत्येक तिथि, प्रत्येक वार, प्रत्येक नक्षत्र, प्रत्येक योग और प्रत्येक करण प्रशस्त है अर्थात् किसी भी क्षण उनका ध्यान-पूजन किया जा सकता है। तृतीया तिथि भगवतीको विशेष प्रिय होनेसे प्रत्येक माहमें उस तिथिको प्रशस्त नैवेद्यसे उनकी महुएके वृक्षमें भावना करके पूजा करनी चाहिये। उनके पूजनसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, वह पापरहित निर्मल बुद्धि प्राप्त कर लेता है तथा उसे नरक-सम्बन्धी किंचिन्मात्र भी भय नहीं होता।

नवम स्कन्ध

नवम स्कन्धका प्रारम्भ मूलप्रकृति और उनके विभिन्न अंशोंके वर्णनसे होता है।

नारदजीके प्रश्न करनेपर कि 'मूलप्रकृतिका स्वरूप

क्या है, उनका लक्षण क्या है तथा वे किस प्रकार प्रकट हुईं?' श्रीनारायण कहते हैं—हे वत्स! देवी प्रकृतिके सम्पूर्ण लक्षण कौन बता सकता है; फिर भी धर्मराजके मुखसे जो मैंने सुना है, उसे यत्किंचित्‌रूपसे बताता हूँ।

महामायासे युक्त परमेश्वर सृष्टिके निमित्त अर्धनारीश्वर बन गये, जिनका दक्षिणार्ध भाग पुरुष और वामार्ध भाग प्रकृति कहा जाता है। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति अभिन्नरूपसे स्थित है, वैसे ही परमात्मा और प्रकृतिरूपा शक्ति भी अभिन्न है। इसीलिये योगीजन स्त्री और पुरुषका भेद नहीं करते और सभी कुछ ब्रह्म है—ऐसा निरन्तर चिन्तन करते हैं। भगवती मूलप्रकृति सृष्टि करनेकी कामनासे भक्तोंपर अनुग्रह करनेहेतु पाँच रूपोंमें अवतरित हुईं।

गणेशमाता **दुर्गा** शिवप्रिया तथा शिवरूपा हैं, जो पूर्णब्रह्मस्वरूपा हैं। शुद्ध सत्त्वरूपा **महालक्ष्मी** धनधान्यकी अधिष्ठात्री तथा आजीविकास्वरूपिणी हैं, वे वैकुण्ठमें अपने स्वामी विष्णुकी सेवामें तत्पर रहती हैं। वे स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंमें राज्यलक्ष्मी, गृहस्थ मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी और सभी प्राणियों तथा पदार्थोंमें शोभारूपमें विराजमान रहती हैं। **भगवती सरस्वती** परमात्माकी वाणी, बुद्धि, विद्या एवं ज्ञानकी अधिष्ठात्री हैं तथा सभी विद्याओंकी विग्रहरूपा हैं; वे देवी मनुष्योंको बुद्धि, कवित्वशक्ति, मेधा, प्रतिभा और स्मृति प्रदान करती हैं। **भगवती सावित्री** चारों वर्णों, वेदांगों, छन्दों, सन्ध्यावन्दनके मन्त्रों एवं समस्त तन्त्रोंकी जननी हैं। पंचप्राणोंकी अधिष्ठात्री, पंचप्राणस्वरूपा तथा सभी शक्तियोंमें परम सुन्दर **भगवती राधा** परमात्मप्रभु श्रीकृष्णकी रासलीलाकी अधिष्ठात्री हैं। जिन्होंने व्रजमण्डलमें वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया तथा ब्रह्मादि देवोंके द्वारा भी जो अदृष्ट थीं, वे ही श्रीराधा भारतवर्षमें सर्वसाधारणको दृष्टिगत हुईं।

प्रत्येक भुवनमें सभी देवियाँ तथा नारियाँ इन्हीं प्रकृतिदेवीके अंश, कला तथा कलांशसे उत्पन्न हैं।

भगवतीके पूर्णावताररूपमें प्रधान अंशस्वरूपा देवियोंका वर्णन—लोकपावनी **गंगा** भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं, वे भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे प्रकट हुईं हैं तथा सनातनरूपसे ब्रह्मद्रव होकर विराजती हैं। विष्णुवल्लभा **तुलसी** भी भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं। वे सती सदा भगवान् विष्णुके चरणपर विराजती हैं और उनकी आभूषणरूपा हैं। कश्यपकी पुत्री **मनसादेवी** भी शक्तिके प्रधान अंशसे प्रकट हुई हैं, वे भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या हैं तथा अत्यन्त ज्ञानविशारद हैं। सभी मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी मनसा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा जो मातृकाओंमें पूज्यतम देवसेना हैं, वे ही **षष्ठीदेवी**के नामसे कही गयी हैं। वे पुत्र-पौत्र आदि प्रदान करनेवाली तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। वे मूलप्रकृतिकी षष्ठांशस्वरूपा होनेके कारण षष्ठीदेवी कही जाती हैं। जल, स्थल, आकाश और गृहमें भी बालकोंके कल्याणमें ये सदा निरत रहती हैं। **मंगलचण्डिका** देवी भी मूलप्रकृतिकी अंशस्वरूपा हैं। वे प्रकृतिदेवीके मुखसे प्रकट हुई हैं और सभी प्रकारके मंगल प्रदान करनेवाली हैं। उत्पत्तिके समय वे मंगलरूपा तथा संहारके समय कोपरूपिणी हैं। पराशक्तिके प्रधान अंशस्वरूपसे कमललोचना **भगवती कालीका** प्राकट्य हुआ है, वे शुम्भ-निशुम्भके साथ युद्धकालमें जगदम्बा दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुईं। ये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—सबकुछ देनेमें समर्थ हैं। भगवती प्रकृतिके प्रधान अंशस्वरूपसे **भगवती वसुन्धरा** प्रकट हुईं हैं। इनके बिना सम्पूर्ण चराचर जगत् निराधार हो जाता है।

तदनन्तर श्रीनारायण प्रकृतिकी कलाओं तथा देवताओंकी भार्याओंका वर्णन करते हैं। स्वाहा अग्निदेवकी भार्या हैं। यज्ञदेवकी पत्नी दीक्षा तथा दक्षिणा हैं। पितृदेवोंकी पत्नी स्वधादेवी हैं। वायुदेवकी पत्नी स्वस्तिदेवी, गणपतिकी पत्नी पुष्टिदेवी, भगवान् अनन्तदेवकी पत्नी तुष्टिदेवी, सत्यदेवकी पत्नी सतीदेवी, मोहकी पत्नी दयादेवी और पुण्यदेवकी पत्नी प्रतिष्ठादेवी हैं। उद्योगदेवकी पत्नी क्रियादेवी हैं, जो सभीके द्वारा पूजित तथा मान्य हैं। अधर्मकी पत्नी मिथ्यादेवी हैं, जिन्हें सभी धूर्तजन पूजते हैं। सत्ययुगमें ये मिथ्यादेवी तिरोहित रहती हैं, त्रेतायुगमें सूक्ष्मरूपसे रहती हैं, द्वापरमें आधे शरीरवाली होकर रहती हैं, किंतु कलियुगमें ये सर्वत्र व्याप्त रहती हैं और अपने भाई कपटके साथ घर-घर घूमती रहती हैं। सुशीलकी दो

पत्नियाँ हैं—शान्ति और लज्जा। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—बुद्धि, मेधा और धृति। रुद्रकी पत्नी कालाग्नि हैं। कालकी तीन पत्नियाँ हैं—सन्ध्या, रात्रि और दिवा। लोभकी दो पत्नियाँ हैं—क्षुधा और पिपासा।

कालकी दो पुत्रियाँ मृत्यु और जरा हैं, जो ज्वरकी पत्नियाँ हैं। निद्राकी एक पुत्री तन्द्रा तथा दूसरी प्रीति है, ये दोनों सुखकी पत्नियाँ हैं। वैराग्यकी दो पत्नियाँ—श्रद्धा और भक्ति सभीकी पूज्या हैं।

प्रकृतिदेवीकी अन्य बहुत-सी कलाएँ हैं, जिनका वर्णन यहाँ दिया गया है। ग्रामदेवियाँ तथा नारियाँ सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। इसीलिये किसी नारीके अपमानसे प्रकृतिका अपमान माना जाता है। जिसने पति-पुत्रवती सुवासिनी ब्राह्मणीका पूजन कर लिया तथा जिसने आठ वर्षकी कन्याका पूजन कर लिया, उसने मानो स्वयं प्रकृतिदेवीकी पूजा कर ली। भारतवर्षमें प्रकृतिदेवीकी जो-जो कलाएँ प्रकट हुईं, वे सभी तथा प्रत्येक ग्राम और नगरमें जो ग्रामदेवियाँ हैं, वे सभी पूजित हैं।

भगवान् श्रीकृष्णसे देव-देवियोंका प्राकट्य— इसके बाद दूसरे अध्यायमें परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वप्रपंचके स्रष्टा तथा सृष्टिके एकमात्र बीजस्वरूप हैं। वे स्वेच्छामय प्रभु सृष्टिकी इच्छासे वामभागसे स्त्री और दक्षिणांशसे पुरुषरूपमें विभक्त हो गये। सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए उन देवीके शरीरसे जो स्वेद उत्पन्न हुआ, उससे विश्वगोलकका निर्माण हुआ और उस स्वेदरूप जलके अधिष्ठाता वरुणदेव तथा उनकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुईं। उन देवीके निःश्वाससे वायुका सृजन हुआ और उसके अधिष्ठाता वायुदेव एवं उनकी पत्नी तथा पुत्र उत्पन्न हुए। उन देवीके जिह्वाग्रसे सरस्वतीदेवी प्रकट हुईं तथा उनके वामांशसे कमला और दक्षिणांशसे राधिका प्रकट हुईं। तब भगवान् श्रीकृष्ण भी द्विधारूप हो गये। उनके वामांशसे जो चतुर्भुजरूप प्रकट हुआ, वे ही नारायण विष्णु हैं, उन्हें उन्होंने कमला और सरस्वतीको पत्नीरूपमें प्रदान किया। राधिका द्विभुज भगवान् श्रीकृष्णकी हृदयेश्वरी बनीं। भगवान्‌के नाभिकमलसे सपत्नीक ब्रह्माजी और वाम अर्धांशसे महादेव प्रकट हुए।

महाविराट्‌की उत्पत्ति— परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे एक बालककी उत्पत्ति हुई, जिसे उन देवीने ब्रह्माण्डगोलकके जलमें छोड़ दिया। वह बालक ब्रह्माजीके आयुपर्यन्त जलमें ही पड़ा रहा। तत्पश्चात् वह महाविराट् और क्षुद्रविराट् रूपमें—दो भागोंमें विभक्त हो गया। शतकोटिसूर्योंकी प्रभावाले उस महाविराट्‌के प्रत्येक रोमकूपमें अखिल ब्रह्माण्ड स्थित थे। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विद्यमान थे। महाविराट्‌के अंशसे ही क्षुद्रविराट् प्रकट हुए, वे श्यामवर्ण पीताम्बरधारी जनार्दन जलकी शय्यापर शयन करते हैं।

गोलोकमें गंगाका प्रादुर्भाव— एक समय गोलोकमें कार्तिक पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। उस समय ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर भगवान् शंकर मधुर गीत गाने लगे। इस मधुर गानको सुनकर सभी देवता सम्मोहित-से हो गये और भगवान् श्रीकृष्ण तथा राधाजी तो विगलित होकर द्रवरूप ही हो गये और वही ब्रह्मद्रव भगवती गंगाके रूपमें जाना गया। वे ही भगवती गंगा इक्ष्वाकुवंशी राजा भगीरथकी तपस्यासे उनके साठ हजार पूर्वजोंको तारनेके लिये पृथ्वीपर आयीं।

लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना— लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगा—तीनों भगवान् विष्णुकी भार्या हैं। एक समयकी बात है, भगवती गंगा प्रीतियुक्त मधुर मुसकानके साथ भगवान्‌की ओर देख रही थीं, यह देखकर सरस्वती कुपित हो गयीं। भगवती लक्ष्मीने उन्हें शान्त करनेका प्रयास किया, परंतु क्रुद्ध सरस्वतीने गंगा और लक्ष्मी दोनोंको नदी बनकर मृत्युलोकमें जानेका शाप दे दिया। निर्दोष लक्ष्मीको ईर्ष्यावश सरस्वतीने शाप दे दिया है—यह देखकर गंगाने भी सरस्वतीको नदी होकर मर्त्यलोकमें जानेका शाप दे दिया। भगवान् श्रीहरिने भी उन सबके शापोंका अनुमोदन करते हुए उन्हें पाँच हजार वर्षतक भारतवर्षमें रहनेका आदेश दिया। इसीलिये लक्ष्मीजी 'पद्मा', गंगाजी 'भागीरथी' और सरस्वतीजी 'सरस्वतीनदी' के रूपमें भारतवर्षमें आयीं।

पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग— पृथ्वीकी उत्पत्तिके

कई प्रकार बताये गये हैं, उनमें मुख्य कथा इस प्रकार है—

महाविराट् पुरुष अनन्त कालसे जलमें स्थित रहते हैं, यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वांगव्यापी शाश्वत मन प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वह मन उस महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूपोंमें प्रविष्ट हो गया। हे मुने! बहुत समयके पश्चात् उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी प्रकट हुई। उस महाविराट्के जितने रोमकूप हैं, उन सबमें सर्वदा स्थित रहनेवाली यह पृथ्वी एक-एक करके जलसहित बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है। यह पृथ्वी सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थित हो जाती है और प्रलयके समय अदृश्य होकर जलके भीतर स्थित रहती है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी पर्वतों तथा वनोंसे सम्पन्न रहती है, सात समुद्रोंसे घिरी रहती है और सात द्वीपोंसे युक्त रहती है।

इसके अनन्तर पृथ्वीकी पूजा, ध्यान, स्तवन और उनका मूल मन्त्र आदि यहाँ प्रस्तुत किया गया है। पृथ्वीका मूल मन्त्र है—**'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा।'** भगवान् विष्णुने प्राचीन कालमें इसी मन्त्रसे पृथ्वीका पूजन किया था।

भगवती तुलसीका कथा-प्रसंग—भगवती तुलसी मूलप्रकृतिकी ही प्रधान अंश हैं। प्रारम्भमें वे गोलोकमें तुलसी नामकी गोपी थीं। भगवान्के चरणोंमें उनका अतिशय प्रेम था। रासलीलामें उनकी श्रीकृष्णके प्रति अनुरक्ति देखकर राधाजीने कुपित होकर उन्हें मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। इससे वे भारतवर्षमें राजा धर्मध्वजकी पुत्री हुईं। गोलोकमें ही सुदामा नामका एक गोप भी था, जो भगवान् श्रीकृष्णका मुख्य पार्षद था, उसे भी किसी कारणसे क्रुद्ध होकर राधाजीने दानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उनके शापसे अगले जन्ममें वह सुदामा शंखचूड़ दानव बना। ब्रह्माजीकी प्रेरणासे भगवती तुलसीका शंखचूड़ दानवसे गान्धर्वविवाह सम्पन्न हुआ। ब्रह्माजीका वरदान प्राप्तकर उस दानवराजने अपने पराक्रमद्वारा देवताओंको स्वर्गसे निष्कासितकर उसपर अपना अधिकार कर लिया। देवतागण त्रस्त होकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। भगवान् विष्णुने देवताओंको शंखचूड़के जन्म एवं वरदान आदिकी सब कथा सुनायी तथा उसकी मृत्युका उपाय बताते हुए उसे मारनेके लिये भगवान् शंकरको एक त्रिशूल प्रदान किया तथा यह भी बताया कि तुलसीका सतीत्व नष्ट होनेपर ही उसकी मृत्यु सम्भव हो सकेगी। इसका भी आश्वासन भगवान् विष्णुने देवताओंको दिया। अपने कथनानुसार भगवान् विष्णुने छलपूर्वक तुलसीका सतीत्व नष्ट किया, उधर भगवान् शंकरने त्रिशूलद्वारा शंखचूड़का वध कर डाला। पतिव्रता तुलसीको भगवान्के द्वारा छलपूर्वक अपना सतीत्व नष्ट करनेकी जानकारी हुई तो अत्यन्त शोकसन्तप्त होकर उसने भगवान्को पाषाण होनेका शाप दे दिया।

तुलसीकी कारुणिक अवस्था देखकर उसे समझाते हुए भगवान्ने कहा—हे भद्रे! तुमने भारतमें रहकर मेरे लिये बहुत समयतक तपस्या की है और साथ ही इस शंखचूड़ने भी उस समय तुम्हारे लिये दीर्घ समयतक तपस्या की थी। तुम्हें पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके बाद अन्तमें वह गोलोक चला गया। अब मैं तुम्हें तुम्हारी तपस्याका फल प्रदान करना उचित समझता हूँ। तुम्हारा यह शरीर गण्डकीनदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा। तुम्हारा केशसमूह पुण्यवृक्षके रूपमें प्रकट होगा, जो तुलसी नामसे प्रसिद्ध होगा। देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले समस्त पुष्पों और पत्रोंमें तुलसीकी प्रधानता होगी। सभी लोकोंमें निरन्तर तुम मेरे सान्निध्यमें रहोगी।

मैं भी तुम्हारे शापसे पाषाण बनकर भारतवर्षमें गण्डकीनदीके तटके समीप निवास करूँगा।* चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शालग्रामशिलाके पूजनसे निश्चितरूपसे सुलभ हो जाता है। उसी समय तुलसीके शरीरसे गण्डकीनदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम बन गये।

इस अध्यायमें श्रीनारायणने नारदसे तुलसी एवं शालग्रामशिलाकी विशेष महिमाका समारोहपूर्वक वर्णन करते हुए भगवती तुलसीके पूजनका विधि-विधान तथा

* आज भी नेपालमें मुक्तिनाथधामके निकट गण्डकीनदीके तटपर शिलारूपमें शालग्राम प्राप्त होते हैं।

स्तोत्रादिका वर्णन प्रस्तुत किया है।

भगवती सावित्रीकी उपासना—नारदजीने प्रश्न किया—ऐसा सुना गया है कि सावित्री वेदोंकी जननी हैं। जगत्में सर्वप्रथम इनकी पूजा किसने की तथा बादमें किन लोगोंने इनकी पूजा की? श्रीनारायणने कहा—हे मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदमाता सावित्रीकी पूजा की, इसके बाद वेदोंने, तदनन्तर विद्वज्जनोंने इनका पूजन किया। तत्पश्चात् भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनका पूजन किया। इसके बाद चारों वर्णोंके लोग इनकी पूजा करने लगे।

नारदजीके प्रश्न करनेपर श्रीनारायणने कहा—मद्रदेशमें अश्वपति नामके एक महान् राजा हुए। उनकी मालती नामक महारानी थीं, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। वे पुष्करक्षेत्रमें जाकर तपस्या करने लगे। संयोगवश वहाँ पराशरमुनि आ गये। उन्होंने राजाको गायत्रीमन्त्रकी महिमा बताते हुए दस लाख जप करनेकी प्रेरणा की और कहा कि इससे आपके तीन जन्मोंके पापोंका नाश हो जायगा और आप भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन प्राप्त करेंगे। इसके साथ ही उन्होंने त्रिकाल-सन्ध्या करनेकी प्रेरणा दी और कहा कि सन्ध्या न करनेवाला व्यक्ति अपवित्र रहता है और वह समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य हो जाता है। वह जो भी सत्कर्म करता है, उसके फलका अधिकारी नहीं रह जाता। जो प्रातः एवं सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्रके समान है।

पराशरमुनिने राजा अश्वपतिको कई प्रकारसे उपदेश प्रदान करते हुए भगवती सावित्रीका पूजा-विधान, स्तोत्र तथा मन्त्र बताया। इसीके अनुसार आराधना करनेपर राजा अश्वपतिको भगवती सावित्रीका दर्शन हुआ तथा उनसे मनोभिलषित वर भी प्राप्त हुआ। सावित्रीकी कृपासे राजाकी पत्नीको कन्याकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम राजा अश्वपतिने सावित्री रखा। युवावस्था प्राप्त होनेपर उसने अनेक गुणोंसे युक्त सत्यवान्का पतिरूपमें वरण किया। एक वर्षके अनन्तर किसी वृक्षसे गिर जानेके कारण सत्यवान्के प्राण निकल गये। उसके सूक्ष्मशरीरको जब यमराज ले जाने लगे तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी। यहाँ सावित्रीसे धर्मराजकी वार्ता होती है। धर्मराज सावित्रीसे कहते हैं कि यदि तुम अपने पतिके साथ जानेकी इच्छा रखती हो तो पहले इस शरीरका त्याग करो। विनाशशील मनुष्य अपने इस नश्वर तथा पांचभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोक कभी नहीं जा सकता। प्राणी कर्मके अनुसार ही जन्म प्राप्त करता है और कर्मानुसार ही मृत्युको भी प्राप्त होता है। सुख-दुःख, भय और शोक भी कर्मसे ही मिलते रहते हैं। अपने कर्मानुसार ही प्राणीको जंगम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, वृक्ष, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, दैत्य-दानव आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। यमराजकी बात सुनकर पतिव्रता सावित्रीने परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति की तथा कर्म आदिके सम्बन्धमें बहुत सारे प्रश्न पूछे। सावित्रीकी बुद्धि और जिज्ञासाको देखकर यमराजने अत्यधिक प्रसन्न होकर सावित्रीको सत्यवान्की सौभाग्यवती प्रियाके रूपमें सुशोभित होनेका वर प्रदान किया। इसके साथ ही दूसरा अभीष्ट वर माँगनेके लिये सावित्रीसे कहा। सावित्रीने यमराजसे निम्नलिखित वर माँगे और कहा—हे महाभाग! सत्यवान्से मुझे सौ पुत्र प्राप्त हों, मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों, मेरे श्वसुरको नेत्रज्योति मिल जाय तथा उन्हें राज्य भी प्राप्त हो जाय। अन्तमें एक लाख वर्ष बीतनेके पश्चात् मैं सत्यवान्के साथ भगवान् श्रीहरिके धाम चली जाऊँ। जीवके कर्मोंका फल तथा संसारसे उसके उद्धारका उपाय सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है, अतः वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें। धर्मराज बोले कि हे महासाध्वी! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। इसके अनन्तर कर्मफलके विषयमें बताते हुए धर्मराजने कहा—भारतवर्षमें समस्त योनियोंमें मानवयोनि परम दुर्लभ है। पुण्यभूमि भारतमें ही शुभ और अशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति होती है, अन्यत्र नहीं। दूसरी जगह लोग केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। शुभ कर्मोंके प्रभावसे प्राणी स्वर्ग आदि लोकोंमें जाता है तथा अशुभ कर्मोंके कारण वह विभिन्न नरकोंमें पड़ता है।

हे साध्वी! सकाम तथा निष्काम भावसे साधक

दो प्रकारके होते हैं। सकाम साधक वैकुण्ठधाममें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं। निष्काम भक्तोंको पुनः इस लोकमें नहीं आना पड़ता।

चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्ममें संलग्न रहकर ही शुभ कर्मोंका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं। जो अपने कर्तव्यकर्मोंसे विमुख हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं और अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतः चारों वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्मोंका पालन करना चाहिये।

दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले कर्म—इसके अनन्तर धर्मराज दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंके अन्तर्गत दानका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति ब्राह्मणको अन्न, आसन, गो, वस्त्र, छत्र, वस्त्रसहित शालग्राम, सज्जा, दीपक, हाथी, घोड़ा, शिबिका, वाटिका, चँवर, पंखा, धान्य, रत्न, तिल, फल, भवन, भूमि आदिका दान देता है। वह इस पुण्यकर्मसे दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति भगवती जगदम्बा, भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर, भगवान् श्रीराम अथवा भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा-उपासना करता है, उससे उसे उनके दिव्य लोकोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रतिदिन गंगास्नान करता है; रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, एकादशी एवं रविवार आदिका व्रत करता है तथा प्रतिदिन पार्थिव लिंग बनाकर शिवकी पूजा करता है। शालग्रामशिलाका पूजन तथा उसके जलका पान करता है, वह दिव्य लोकोंमें जानेका अधिकारी होता है।

अशुभ कर्मोंका फल—इसके बाद यमराज विभिन्न प्रकारके पापोंका तथा नरकोंका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने बन्धु-बान्धवोंको अपमानपूर्वक कटु वचन कहता है, घर आये भूखे-प्यासे व्यक्तिको भोजन नहीं कराता, जो भगवती जगदम्बा, भगवान् विष्णु, शिव तथा वेद-पुराणोंकी निन्दा करता है, जो किसीकी वृत्तिको छीनता है, जो माता-पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा अनाथका भरण-पोषण नहीं करता, जो अतिथिको देखकर उसके प्रति उपेक्षाभावसे दृष्टिको वक्र कर लेता है, जो परपुरुष अथवा परस्त्रीगमन करता है, जो सहृदयके साथ शठताका व्यवहार करता है, जो किसी विकलांगको देखकर हँसता है और उसकी निन्दा करता है, जो लोभके वशीभूत होकर अपने भरण-पोषणके लिये जीवोंकी हत्या करता है, जो अपनी कन्याको धनके लोभसे बेच देता है, जो व्रतों, उपवासों और श्राद्धोंके अवसरपर क्षौरकर्म करता है, जो दयाहीन मनुष्य विषके द्वारा किसी प्राणीकी हत्या करता है, जो किसी दूसरेकी पैतृक सम्पत्तिका हरण तथा दूसरेके सामानकी चोरी करता है एवं इस प्रकारके और भी कई पाप करता है तो इन पापोंको करनेवाला व्यक्ति विभिन्न नरकोंमें पड़कर दारुण कष्ट भोगता है। यहाँ धर्मराजने छियासी नरककुण्डों तथा उनके लक्षणोंका वर्णन करते हुए उनके नाम भी गिनाये हैं। अन्तमें धर्मराज सावित्रीको भगवतीकी भक्ति प्रदान करते हैं और उनकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—स्वयं परमपुरुष ही प्रकृति हैं। वे दोनों परस्पर उसी प्रकार अभिन्न हैं, जैसे—अग्निसे उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न है। वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति महामाया हैं, वे निराकार होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये अनेक रूप धारण करती हैं। भगवती दुर्गाकी भावना करके जो स्त्री भक्तिपूर्वक उनका पूजन करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें ऐश्वर्यमयी भक्तिके परमपदको प्राप्त होती है।

ऐसा कहकर धर्मराज अपने लोकको चले गये और अपने पतिको साथ लेकर सावित्री भी अपने घर चली गयी। पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुख भोगकर वह पतिव्रता सावित्री अपने पतिके साथ देवीलोक चली गयी।

सविताकी अधिष्ठात्री देवी होने अथवा सूर्यके ब्रह्मप्रतिपादक गायत्रीमन्त्रकी अधिदेवता होने तथा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे ये जगत्में सावित्री नामसे प्रसिद्ध हैं।

भगवती लक्ष्मीके प्राकट्यकी कथा तथा दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना—इसके अनन्तर भगवती राधाके दाहिने अंशसे लक्ष्मीका प्राकट्य

तथा भगवान् कृष्णके दाहिने अंशसे भगवान् विष्णुका प्राकट्य होता है।

प्राचीन कालकी बात है कि तीनों लोकोंके अधिपति इन्द्र मधुपानसे प्रमत्त होकर वैकुण्ठधामसे कैलासपर्वतकी ओर जा रहे थे। उन्होंने मार्गमें दुर्वासामुनिको देखकर उन्हें प्रणाम किया। दुर्वासाने प्रसन्न होकर इन्द्रको आशीर्वाद दिया तथा भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया। मदोन्मत्त इन्द्रने उसे ऐरावत हाथीके ऊपर फेंक दिया। यह देखकर दुर्वासामुनि अत्यन्त कुपित हो गये और उन्होंने इन्द्रको शाप दे दिया कि हे इन्द्र! तुमने अभिमानवश इस पारिजात-पुष्पको हाथीपर डाल दिया। अतः लक्ष्मीजी तुमलोगोंका परित्याग करके भगवान् श्रीहरिके लोकमें चली जायँ। मुनि दुर्वासाके शापसे इन्द्र श्रीहीन हो गये और अमरावतीपर दैत्योंका शासन हो गया। देवतागण गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् विष्णुके पास गये और उनसे प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने कहा—जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहती, शिवकी पूजा नहीं होती, अतिथियोंको भोजन नहीं कराया जाता, जो साधक व्रत-उपवास नहीं करते, सन्ध्या-वन्दन नहीं करते, सदा अपवित्र रहते हैं, जो परमात्म-प्रभुकी भक्तिसे रहित हैं, जो दूसरोंकी निन्दा करता है, द्वेषभाव रखता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा प्राणियोंके प्रति दयाभाव नहीं रखता, वहाँसे भगवती लक्ष्मी दूर चली जाती हैं।

यह कहकर भगवान् विष्णुने भगवती लक्ष्मीको क्षीरसागरके यहाँ जन्म लेनेकी आज्ञा प्रदान की तथा देवताओंको समुद्रमन्थन करनेका सुझाव दिया। भगवान्‌के आज्ञानुसार समस्त देवताओंने राक्षसोंके साथ मन्दराचल-पर्वतको मथानी, कच्छपको आधार और शेषनागको मथानीकी रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किया, जिसके फलस्वरूप अमृत, नानाविध रत्न आदि अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुईं। साथ ही समुद्रसे भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य हुआ, जिन्होंने क्षीरसागरमें शयन करनेवाले सर्वेश्वर विष्णुको वरमाला समर्पित कर दी। तत्पश्चात् ब्रह्मा, शिव तथा देवताओंके द्वारा पूजा तथा स्तुति किये जानेपर देवी लक्ष्मीने देवताओंके भवनपर अपनी कृपादृष्टि डाली। फलस्वरूप वे देवगण मुनि दुर्वासाके शापसे मुक्त हो गये तथा सभी अपने-अपने लोकोंको चले गये।

भगवती स्वाहाका उपाख्यान—नारदजी कहते हैं—सभी धार्मिक कर्मोंमें हवनके समय स्वाहादेवी, श्राद्धकर्ममें स्वधादेवी तथा यज्ञादि कर्मोंमें दक्षिणादेवी प्रशस्त मानी गयी हैं।

सृष्टिके प्रारम्भमें देवतागण ब्रह्माजीके पास आये तथा अपने आहारके लिये प्रार्थना की। उन दिनों ब्राह्मणोंद्वारा अग्निमें जो हवि प्रदान की जाती थी, उसे देवता प्राप्त नहीं कर पाते थे। इस प्रकार वे आहारसे वंचित रह जाते थे। देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने श्रीकृष्णके आदेशानुसार मूलप्रकृति भगवतीकी आराधना की। जिसके फलस्वरूप स्वाहादेवी मूलप्रकृतिकी कलासे प्रकट हो गयीं। ब्रह्माजीने उनसे प्रार्थना की कि आप अग्निकी परम सुन्दर दाहिकाशक्ति हो जाइये; क्योंकि अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हैं। स्वाहादेवीने इसे स्वीकार नहीं किया तथा वे श्रीकृष्णकी उपासनामें संलग्न हो गयीं। स्वाहादेवीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि वराहकल्पमें तुम मेरी भार्या बनोगी, इस समय तुम दाहिकाशक्तिके रूपमें अग्निदेवकी मनोहर पत्नी बनो। इस प्रकार स्वाहादेवीका पाणिग्रहण अग्निसे हो गया, तभीसे अग्निमें हवन करनेपर मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्द जोड़कर मन्त्रोच्चारण करनेपर देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं और वे सन्तुष्ट हो गये।

भगवती स्वधाका उपाख्यान—सृष्टिके आरम्भमें जगद्विधाता ब्रह्माने पितरोंके लिये श्राद्ध-तर्पण आदिका विधान किया, परंतु किसी व्यक्तिद्वारा जो श्राद्धीय पदार्थ अर्पण किया जाता था, उसे पितृगण प्राप्त नहीं कर पाते थे; अतः क्षुधासे व्याकुल सभी पितरोंने ब्रह्माजीकी सभामें जाकर उनको सारी बात बतायी। तब ब्रह्माजीने एक मनोहर मानसी कन्याका सृजन किया। मूल-प्रकृतिकी अंशरूपा स्वधा नामक ये देवी पितरोंकी पत्नीस्वरूपा और कमलके समान सुन्दर थीं। ब्रह्माजीने उस तुष्टिरूपिणी देवीको

सन्तुष्ट पितरोंको समर्पित कर दिया तथा द्विजोंको यह गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया कि पितरोंको कव्यपदार्थ अर्पण करते समय स्वधायुक्त मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। तभीसे द्विजगण उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे।

देवताओंके लिये हव्य प्रदान करते समय स्वाहा और पितरोंको कव्य प्रदान करते समय स्वधाका उच्चारण श्रेष्ठ माना गया है।

भगवती दक्षिणाका उपाख्यान—अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करनेपर भी जब देवताओंको यज्ञफल नहीं प्राप्त हुआ, तब वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये। देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माने भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके विग्रहसे मर्त्य-लक्ष्मीको प्रकट किया, जिसका नाम उन्होंने दक्षिणा रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने भी यज्ञकार्योंकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणाको यज्ञपुरुषको समर्पित कर दिया, जिससे दक्षिणासे युक्त यज्ञपुरुष सभी प्राणियोंको उनके कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। कर्ताको चाहिये कि कर्म करके तुरंत दक्षिणा दे दे, ऐसा करनेसे कर्ताको उसी क्षण फल प्राप्त हो जाता है। जो कर्म बिना दक्षिणाके सम्पन्न होता है, उसके फलका भोग राजा बलि करते हैं। दक्षिणायुक्त कर्ममें ही फल-प्रदानका सामर्थ्य होता है।

भगवती षष्ठीका उपाख्यान—भगवती षष्ठी मूल-प्रकृतिके छठे अंशसे आविर्भूत हैं, ये बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ये स्वामी कार्तिकेयकी भार्या हैं, और देवसेनाके नामसे विख्यात हैं। ये बालकोंको आयु प्रदान करती हैं और उनका भरण, पोषण तथा रक्षण भी करती हैं। ये सिद्धयोगिनी हैं, स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रतके मृतपुत्रको इन्होंने जीवनदान दिया तथा तभीसे सर्वत्र इनकी पूजा होने लगी। यह कथा नवमस्कन्धके ४६वें अध्यायमें विस्तारपूर्वक लिखी गयी है।

भगवती मंगलचण्डीका उपाख्यान—भगवती मंगलचण्डी मूलप्रकृति दुर्गाका ही एक रूप हैं, ये स्त्रियोंकी अभीष्ट देवता हैं। त्रिपुरासुरके वधके लिये भगवान् शिवने इन्हींका आराधन किया और इन भगवतीने शक्तिस्वरूपा होकर उनकी सहायता की थी, जिससे भगवान् शिव उस दैत्यका वध कर सके। तदनन्तर स्वयं भगवान् शिवने उनका पूजन किया था।

भगवती मनसाका उपाख्यान—भगवती मनसा महर्षि कश्यपकी मानसी कन्या हैं। वे मनसे ध्यान करनेपर प्रकाशित होती हैं, इसीलिये मनसादेवी नामसे विख्यात हैं। राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्होंने नागोंकी प्राणरक्षा की थी, अतः ये नागेश्वरी कही जाती हैं। इन्होंने भगवान् शिवसे सिद्धयोग प्राप्त किया था, अतः ये सिद्धयोगिनीके नामसे जानी जाती हैं। मुनीश्वर आस्तीककी माता होनेके कारण ये आस्तीकमाता नामसे जगत्में विख्यात हैं। ये महात्मा जरत्कारुकी प्रियपत्नी थीं, इसलिये ये जरत्कारुप्रिया कहलाती हैं। इनकी रोचक कथा विस्तारपूर्वक ४८वें अध्यायमें प्रस्तुत की गयी है।

आदि गौ सुरभिका आख्यान—देवी सुरभि गौओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनका प्राकट्य परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी दुग्धपानकी इच्छापूर्तिके लिये उनके ही वामभागसे हुआ था। इनका दूध जन्म-मृत्यु तथा बुढ़ापेको हरनेवाला, अमृतसे बढ़कर था। पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभिकी पूजा की थी, तभीसे तीनों लोकोंमें देवी सुरभिकी पूजाका प्रचार हो गया।

भगवती राधा तथा भगवती दुर्गाका उपाख्यान—जगत्की उत्पत्तिके समय मूलप्रकृतिस्वरूपिणी ज्ञानमयी भगवतीसे प्राण तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवियोंके रूपमें दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी तथा श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे शक्तियाँ ही सम्पूर्ण जीवोंको सदा नियन्त्रित तथा प्रेरित करती हैं। विराट् आदि चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् उन्हीं शक्तियोंके अधीन है। जबतक उन दोनों शक्तियोंकी कृपा नहीं होती, तबतक मोक्ष दुर्लभ रहता है। अतएव उन दोनोंकी प्रसन्नताके लिये उनकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये।

भगवती श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी सदा

प्रसन्नतापूर्वक उन श्रीराधिकाका ध्यान करते रहते हैं। राधिकाकी पूजाके बिना श्रीकृष्णकी पूजाका अधिकार नहीं है। अतः सभीको भगवती राधाका पूजन अवश्य करना चाहिये।

भगवती दुर्गा समस्त प्राणियोंकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा अन्तर्यामीस्वरूपिणी हैं। ये घोर संकटसे रक्षा करती हैं। अतः जगत्में दुर्गा नामसे विख्यात हैं। ये सभी वैष्णवों तथा शैवोंकी उपास्य हैं, मूलप्रकृतिस्वरूपिणी हैं तथा जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करनेवाली हैं।

दशम स्कन्ध

दशम स्कन्धका प्रारम्भ नारदजीकी इस जिज्ञासासे होता है कि सभी मन्वन्तरोंमें देवी कौन-कौन-सा स्वरूप धारण करती हैं तथा किन-किन स्वरूपोंमें माहेश्वरीका प्रादुर्भाव होता है। श्रीनारायण वर्णन करते हुए कहते हैं—पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ। चतुर्मुख ब्रह्माने स्वायम्भुव नामक मनुको अपने मनसे उत्पन्न किया। इस बार वे मनु परमेष्ठी ब्रह्माके मानसपुत्र कहलाये। पुनः ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको उत्पन्न किया और उन्हें मनुकी पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे मनु क्षीरसागरके पवित्र तटपर भगवती जगदम्बाकी आराधना करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बा प्रकट हो गयीं तथा उन्हें यह वर प्रदान किया कि सृष्टिकार्यमें आनेवाले सभी विघ्न क्षीण होकर नष्ट हो जायँ। इस प्रकार उन महात्मा मनुको वर देकर वे विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं।

विन्ध्याचलका आख्यान—एक बार देवर्षि नारद पृथ्वीलोकमें विचरण करते हुए विन्ध्यपर्वतपर पहुँच गये। विन्ध्यपर्वतके आग्रह करनेपर नारदजीने बताया कि सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा तथा समस्त ग्रह-नक्षत्रोंके अधिपति श्रीसूर्यनारायण सुमेरुपर्वतकी परिक्रमा करते हैं, जिसके कारण वह सुमेरुपर्वत अभिमानपूर्वक अपनेको पर्वतोंमें श्रेष्ठ तथा महान् मानता है। महर्षि नारदकी बात सुनकर विन्ध्यपर्वत चिन्तित हो गया तथा उसने यह निश्चय किया कि मैं सूर्यका मार्ग अवरुद्ध करूँगा। विन्ध्याचलने अपना विशाल स्वरूप धारणकर अपने उच्च शिखरोंसे सूर्यका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। इससे सारे संसारमें त्राहि-त्राहि मच गयी। एक ओर प्रचण्ड गरमी पड़ने लगी तो दूसरी ओर रात्रि ही बनी रही। यह देखकर सभी देवता भगवान् विष्णुके पास गये और उन्हें सारी बात बतायी। भगवान् विष्णुने देवताओंको भगवतीके परम उपासक वाराणसीमें निवास करनेवाले अगस्त्यजीके पास भेजा। देवताओंने अगस्त्यजीसे विन्ध्याचलकी वृद्धिको रोकनेकी प्रार्थना की। अगस्त्यजी बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये; क्योंकि उन्हें इसके लिये काशीका त्याग करके दक्षिणमें जाना पड़ रहा था। लोकहितके लिये वे अपनी पत्नी लोपामुद्राको साथ लेकर दक्षिणके लिये प्रस्थान कर गये। विन्ध्यपर्वत उन्हें सामने देखकर सद्भावनत होकर साष्टांग लेट गया। अगस्त्यजीने विन्ध्याचलसे कहा—हे वत्स! जबतक मैं लौटकर आता हूँ तबतक तुम इसी प्रकार रहो; क्योंकि हे पुत्र! मैं तुम्हारे ऊँचे शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ। इस प्रकार कहकर वे अगस्त्यमुनि उस विन्ध्यके शिखरोंपर होते हुए मलयाचलपर आकर आश्रममें निवास करने लगे।

मनुद्वारा पूजित वे भगवती भी वहीं विन्ध्यगिरिपर आ गयीं। वे ही देवी समस्त लोकोंमें विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात हो गयीं।

अन्य मनुओंद्वारा भगवतीकी आराधना—आद्य स्वायम्भुव मनुके बाद उनके पौत्र अर्थात् प्रियव्रतके पुत्र स्वारोचिष दूसरे मनु बने। उन्होंने यमुनातटपर सूखे पत्तोंका आहार करते हुए भगवतीकी बारह वर्षोंतक आराधना की। उनकी इस तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें मन्वन्तराधिप बननेका वरदान दिया। इनके बाद उनके भाई उत्तम तीसरे मनु हुए। उन्होंने तीन वर्षतक भगवतीके वाग्भवमन्त्रका जपकर उनका अनुग्रह प्राप्त किया। उत्तमके बाद उनके भाई तामस चौथे मनु हुए। नर्मदाके दक्षिणी तटपर कामबीज मन्त्रका जप करते हुए उन्होंने भगवती परमेश्वरीकी कृपा प्राप्त की। तामसके बाद उनके अनुज रैवत पाँचवें मनु हुए। यमुनातटपर कामसंज्ञक बीजमन्त्रका जप करते हुए उन्होंने भगवतीकी आराधना की। रैवतके बाद चाक्षुष छठे मनु हुए। ब्रह्मर्षि पुलहकी सत्प्रेरणासे वे भगवतीकी आराधनामें प्रवृत्त हुए। उन्होंने बारह वर्षोंतक भगवतीके

बीजमन्त्रका निरन्तर जप किया। तब देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। श्राद्धदेव (वैवस्वत) सातवें मनु हुए। पराम्बा भगवतीकी तपस्यासे उनकी अनुकम्पा प्राप्त करके वे मन्वन्तराधिप हुए। आठवें मनु सावर्णि हुए। पूर्वजन्ममें वे सुरथ नामक राजा थे। उन्होंने भगवतीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर आराधना की थी। उन्हींकी कृपासे वे अगले जन्ममें सावर्णि मनु हुए।

मधु-कैटभका वध—प्रलयकालमें जब भगवान् विष्णु शेषशय्यापर शयन कर रहे थे, उसी समय उनके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो दानवोंकी उत्पत्ति हुई, वे दानव भगवान् विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर आसीन भगवान् ब्रह्माका वध करनेको उद्यत हो गये, तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको जगाना चाहा, पर वे योगनिद्राके वशीभूत होनेसे जाग न सके। यह देख ब्रह्माजीने भगवती योगनिद्राकी स्तुतिकर भगवान् विष्णुको प्रबोधित किया और भगवतीद्वारा मधु-कैटभको मोहित किये जानेपर भगवान् विष्णुने उनका वध किया।

भगवतीद्वारा महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ और चण्ड-मुण्डका वध—पूर्वकालमें महिषासुर नामक एक दैत्य हुआ, जिसने देवताओंको जीतकर उन्हें स्वर्गसे निष्कासित कर दिया। तब पराजित देवता भगवान् विष्णुके पास गये। भगवान् विष्णुके परामर्शसे सभी देवताओंने अपना-अपना तेज प्रकट किया। वही तेज पुंजीभूत होकर भगवती महिषमर्दिनी दुर्गाके रूपमें प्रकट हुआ। सभी देवताओंने उन्हें अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित किये और उनसे महिषासुरका वध करनेकी प्रार्थना की। देवताओंके कष्ट-निवारणार्थ भगवतीने युद्धमें महिषासुरका संहार किया। इसी प्रकार एक समय शुम्भ-निशुम्भ नामके दो अत्यन्त शक्तिशाली दानव हुए, उन्होंने भी देवताओंका राज्य छीनकर उन्हें स्वर्गसे निष्कासित कर दिया, तब देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने युद्ध करके सेनापतियों—धूम्राक्ष, रक्तबीज, चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध किया।

वैवस्वत मनुके छः पुत्रोंका आख्यान—वैवस्वत मनुके करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति तथा त्रिशंकु नामके छः पुत्र थे, जो क्रमशः दक्षसावर्णि, मेरुसावर्णि, सूर्यसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, रुद्रसावर्णि और विष्णुसावर्णिके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन सबने भक्तिभावसे भगवतीकी आराधना की, जिसके फलस्वरूप वे सब क्रमशः नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें मनु हुए।

भगवती भ्रामरीका आख्यान—पूर्वकालमें अरुण नामका एक महान् बलशाली दैत्य था। उसने ब्रह्माजीकी तपस्या करके अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया था। युद्धमें पुरुषसे, स्त्रीसे, दो पैर या चार पैरवाले प्राणियोंसे या उभय आकारवाले प्राणीसे उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। वरके प्रभावसे उन्मत्त हुए उस अरुण नामक दैत्यने सारे संसारमें त्राहि-त्राहि मचा दी। तब देवताओंकी प्रार्थनापर भगवती भ्रामरीदेवीके रूपमें प्रकट हुईं। उनकी माला और हाथोंमें असंख्य षट्पद—भ्रमर स्थित थे, उन भ्रमरोंने अरुण और उसकी सेनापर आक्रमणकर सबको मार डाला। इस प्रकार भगवती भ्रामरीकी कृपासे देवताओं तथा सम्पूर्ण जगत्को अरुणदैत्यके अत्याचारसे मुक्ति मिली।

इस दशम स्कन्धमें ये सम्पूर्ण कथाएँ अत्यन्त विस्तारपूर्वक लिखी गयी हैं, जो यहाँ स्थानाभावके कारण संक्षिप्तरूपमें प्रस्तुत की गयी हैं।

एकादश स्कन्ध

ग्यारहवें स्कन्धमें नारदजीके जिज्ञासा करनेपर श्रीनारायण जिस सदाचारके अनुष्ठानसे देवी सदा प्रसन्न रहती हैं, उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि माता-पिता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी अपना कल्याण करनेमें सहायक नहीं होता, केवल धर्म ही साथ रहता है। अतः आत्मकल्याणके लिये समस्त साधनोंसे धर्मका नित्य संचय करना चाहिये।

'आचारः प्रथमो धर्मः' आचार ही प्रथम धर्म है—ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें कहा गया है। अतएव द्विजको चाहिये कि वह अपने हितार्थ सदाचारके पालनमें सदा संलग्न रहे। मनुष्य सदाचारसे आयु, अन्न, धन, सम्पत्ति, सन्तान आदि तथा अक्षय सुख प्राप्त करता है। आचार पापको भी नष्ट कर देता है।

शास्त्रीय तथा लौकिक भेदसे आचार दो प्रकारका

बताया गया है—एक शौचाचार, दूसरा सदाचार। नारदजीके यह पूछनेपर कि जगत्‌में शास्त्रोंका बाहुल्य है। अतः धर्ममार्गका निर्णय किस प्रकार किया जाय। इसपर श्रीनारायणजी कहते हैं कि श्रुति, स्मृति और पुराण— इन तीनोंमें जो कुछ भी कहा गया है; वही धर्म है। इसके अतिरिक्त कहीं भी नहीं। इन तीनोंमें जहाँ परस्पर विरोध हो, वहाँ श्रुतिको प्रमाण मानना चाहिये। इसी प्रकार स्मृति तथा पुराणमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ है। वेद ही पूर्णरूपसे धर्ममार्गके प्रमाण हैं। उस वेदराशिसे विरोध न रखनेवाला जो कुछ भी है, वही प्रमाण है, दूसरा नहीं।

विद्वान् पुरुषको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आचार-सम्बन्धी सभी नियमोंका पालन करना चाहिये। प्रातःकाल योगी पुरुष अपने इष्टदेवका चिन्तन करे तथा ब्रह्मका ध्यान करे। ऐसा निरन्तर करनेसे जब जीव तथा ब्रह्मका ऐक्य स्थापित हो जाता है, तब उसी क्षण वह जीवन्मुक्त हो जाता है। इस अध्यायमें उषाकाल, अरुणोदयकाल, प्रातःकाल तथा सूर्योदयकालका समय बताया गया है। इसके साथ ही मल-मूत्रके त्याग, दन्तधावन, स्नान तथा आचमन आदिकी विधिका वर्णन हुआ है। श्रीनारायण कहते हैं कि प्रातःस्नान न करनेवालेकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। अतएव प्रातःकालीन स्नान अवश्य करना चाहिये। स्नानके अनन्तर सन्ध्या-वन्दन तथा गायत्रीमन्त्रके जपकी विधि बतायी गयी है। गायत्रीमन्त्रसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है; क्योंकि यह उच्चारण करनेवालेकी रक्षा करता है, अतः इसे गायत्रीनामसे अभिहित किया जाता है।

रुद्राक्ष-माहात्म्य—भगवान् शंकर त्रिपुरासुरके वधके लिये एक हजार दिव्य वर्षोंतक अघोरास्त्र नामक महान् अस्त्रका चिन्तन करते रहे, उस समय अत्यन्त व्याकुल होकर उनके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। उनके दाहिने नेत्रसे कपिलवर्ण, बायें नेत्रसे श्वेतवर्ण तथा तीसरे नेत्रसे कृष्णवर्णके रुद्राक्ष उत्पन्न हुए। ये रुद्राक्ष एकसे लेकर चौदह मुखतकके होते हैं, जो शिवके विभिन्न स्वरूप हैं। इन्हें सिर, हृदय, बाहुवलय तथा मणिबन्धपर धारण करना चाहिये। इनके धारणका अनन्त फल होता है और धारणकर्ता साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। रुद्राक्षको भक्तिपूर्वक पवित्र अवस्थामें ही धारण करना चाहिये, अपवित्र अवस्थामें इसे नहीं धारण करना चाहिये। शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंकी सिद्धिके लिये रुद्राक्षकी ही जपमाला बनानी चाहिये।

रुद्राक्ष-धारणका इतना माहात्म्य है कि यह समस्त पापोंको नष्टकर शिव-सायुज्यकी प्राप्ति करा देता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है कि विन्ध्यपर्वतपर एक गर्दभ रुद्राक्ष ढोया करता था, एक दिन रुद्राक्ष ढोते हुए लड़खड़ाकर गिरनेसे उसकी मृत्यु हो गयी, परंतु रुद्राक्षके स्पर्शके प्रभावसे उसकी महिमा न जानते हुए भी वह गर्दभ शिवस्वरूप धारणकर शिवलोक चला गया। एक अन्य आख्यानके अनुसार कोसलदेशमें गुणनिधि नामक एक ब्राह्मण था। उस पापीसे कोई भी महापातक छूटा नहीं था, जब उसकी मृत्यु हुई तो यमदूत उसे नारकीय ताड़ना देनेके लिये ले जाने लगे तो उसी समय शिवदूत वहाँ आ पहुँचे और बोले कि जिस स्थानपर इसकी मृत्यु हुई है, वहाँ दस हाथ नीचे रुद्राक्ष विद्यमान है, उसीके प्रभावसे हमलोग इसे शिवके धाम ले जायँगे।

भस्म-धारण एवं उसका माहात्म्य—भगवान् शंकरकी प्रीति प्राप्त करनेके लिये भस्मधारण करना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इसे शिरोव्रत कहा गया है। भस्मधारणका इतना माहात्म्य है कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभी देवता भी भस्म धारण करते हैं। देवताओंमें देवत्वकी प्रतिष्ठा उनके भस्म धारण करनेके कारण ही कही गयी है। जो तीनों सन्ध्याओंके समय भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित हो जाता है। सम्पूर्ण शरीरमें भस्मलेपनको भस्मस्नानकी संज्ञा दी गयी है। यहाँ भस्मस्नानकी अत्यधिक महिमा बताते हुए दुर्वासामुनिके एक आख्यानका भी वर्णन किया गया है।

सन्ध्योपासन और उसका माहात्म्य—विप्र वृक्ष है, सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ हैं; वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं। अतः प्रयत्नके साथ मूल (जड़)-की रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट